कृष्णदास संस्कृत ग्रन्थमाला ९६

श्रीमदन्नभट्टविरचितः

# तर्कसंग्रहः

न्यायबोधिनी-पदकृत्य-'मेधा' हिन्दीव्याख्योपेतः

सम्पादकः

**श्री शाश्वतानन्द झा**

एम. ए., साहित्याचार्यश्च

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

९६

****

श्रीमदन्नम्भट्टविरचितः

# तर्कसंग्रहः

न्यायबोधिनी-पदकृत्य-'मेधा' हिन्दीव्याख्योपेतः

सम्पादकः

श्री शाश्वतानन्द झा

एम. ए., साहित्याचार्य

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

**प्रकाशक** : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
**मुद्रक** : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
**संस्करण** : द्वितीय, सन् २००१
**मूल्य** : २५.००

**© कृष्णदास अकादमी**

पोस्ट बॉक्स नं० १११८
के. ३७/१८८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

*अपरं च प्राप्तिस्थानम्*

**चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस**
पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बॉक्स नं० १००८ के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३३४५८ (आफिस), ३३४०३२ एवं ३३५०२० (आवास)

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
96
*****

# TARKASAṂGRAHA

Of

## ANNAMBHAṬṬA

with

***Nyāyabodhinī, Padakṛtya and 'Medhā' Hindi Commentaries***

Edited By

**Sri Shashvatananda Jha**

M. A., Sāhityācārya

KRISHNADAS ACADEMY, VARANASI

**Publisher** : Krishnadas Academy, Varanasi.
**Printer** : Chowkhamba Press, Varanasi.

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers & Distributors
Post Box No. 1118
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Varanasi-221 001
Phone : 335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

*Also can be had from*

**CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE**
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221 001 (India)
Phone : Off. 333458, Resi. : 334032 & 335020

# दो शब्द

यह 'तर्कसंग्रह' का संस्करण पूर्णरूप से छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। इसकी हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण रूप से मूल के आशय को पाठकों के सामने रख देने में कहाँ तक समर्थ है, यह तो विद्वान् ही बता पायेंगे।

इस संस्करण में संस्कृत की दो टीकाएँ हमने जोड़ दी हैं जो परम्पराप्राप्त स्वीकृत पाठ्यक्रम है। यह हिन्दी व्याख्या स्वयं में संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित है। इस कार्य के सम्पादन में मुझे तपोनिष्ठ म० वैदेहीशरण जी, श्री सुधीर झा जी और सीताराम झा जी से बहुत सहायता प्राप्त हुई। अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

मैं अपने गुरुकल्प श्रद्धेय डॉ० श्रीनारायण मिश्र, रीडर, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ का आमुख लिखकर मेरे ऊपर अत्यन्त कृपा की है। उनके बिना तो यह कार्य हो ही नहीं पाता। इस कार्य को करने की प्रेरणा मुझे उन्हीं से मिली और समय-समय पर इसकी व्याख्या में मुझे उन्होंने बड़ी ही मदद की है, जिसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

यह कार्य यद्यपि बहुत छोटा है फिर भी यदि कृष्णदास अकादमी के निदेशक बन्धुद्वय का प्रोत्साहन न मिलता तो यह इतना शीघ्र न प्रकाशित हो पाता। अतः मैं श्री विट्ठलदास गुप्त और श्री ब्रजमोहनदास गुप्त का आभारी हूँ।

विद्वद्वंशवद

**शाश्वतानन्द झा**

# समर्पणम्

यत्कृपालेशमात्रेण मन्दोऽपि प्रतिभां श्रयेत् ।
तस्यै देव्यै सरस्वत्यै कृतिरेषा समर्प्यते ॥

# आमुख

भौतिक दृष्टिकोण से शान्ति की सम्भावना समाप्त हो जाने पर चिन्तनशील मानव ने जिस शास्त्र का शाश्वत शान्ति के निमित्त उद्भावन किया वही दर्शन-शास्त्र है। भारतवर्ष में विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय—ऋग्वेद से हीं इस दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ स्पष्टरूप में देखने को मिलता जिसका क्रमशः विकास उपनिषद् आदि परवर्त्ती वाङ्मय में हुआ है। किन्तु सभी चिन्तकों के विचार सर्वथा अभिन्न नहीं होते। अत: दार्शनिक चिन्तन का स्वरूप भी एक नहीं रहा। यह तथ्य प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन से प्रमाणित है। अतः परवर्त्ती विवेचकों ने इन सभी विचारधाराओं का क्रमबद्ध विवेचन करने के लिए जो संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित ग्रन्थ लिखे, उन्हें ही हम भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों के सूत्र-साहित्य के रूप में जानते। इन सम्प्रदायों को मूलरूप में नौ वर्गों में विभक्त किया गया है—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, चार्वाक, बौद्ध और जैन। इनमें प्रथम छः 'आस्तिक' और अन्तिम तीन 'नास्तिक' सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सम्प्रदायों का सूत्र-साहित्य गम्भीरता के कारण सर्वजनवेद्य न हो सका जिससे परवर्त्ती मनीषियों को भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के सूत्रों पर भाष्य, वृत्ति आदि टीकायें और बाद में प्रटीकायें लिखनी पड़ीं। किन्तु इस क्रम से एक-एक सम्प्रदाय का इतना अधिक विस्तार हो गया कि अल्प समय में किसी भी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को जानना व्यक्ति के लिए असम्भव हो गया। अतएव परवर्ती युग में (लगभग १०वीं शताब्दी से) आचार्यों ने जिज्ञासुओं के उपकारार्थ अनेक प्रकार के प्रामाणिक लघु ग्रन्थ लिखे, जिन्हें पारिभाषिक रूप में 'प्रकरण', 'संग्रह' आदि कहा जाता है।

दो समान-तन्त्रों का आश्रय लेकर जो लघु-ग्रन्थ लिखे गये, उन्हें 'प्रकरण' ग्रन्थ कहते। इसमें दो में से किसी एक शास्त्र की प्रधानता और दूसरे की अप्रधानता होती है—एक शास्त्र के सिद्धान्त को मुख्य आधार मानकर उसमें अन्य शास्त्र के उत्तम सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है। पूर्वोक्त आस्तिक

तन्त्रों में परस्पर साम्य के कारण सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक और पूर्व-मीमांसा—उत्तरमीमांसा ( वेदान्त ) समान-तन्त्र हैं। 'तर्कसंग्रह' में वैशेषिक-शास्त्र का प्रधानतया और न्याय-शास्त्र का अप्रधानतया समावेश है। इसमें पदार्थों का निरूपण तो वैशेषिक-शास्त्रानुसार और प्रमाणों का निरूपण न्याय-शास्त्रानुसार किया गया है।

यह तर्कसंग्रह १७वीं शताब्दी के तैलङ्गवंशीय ब्राह्मण पण्डित अन्नम्भट्ट की रचना है। अत्यन्त लघुकाय होने पर भी यह न्याय-वैशेषिक शास्त्रों का एक प्रामाणिक प्रकरण ग्रन्थ है। इसका महत्त्व इसी से प्रमाणित है कि इसपर लगभग २४ टीकायें लिखी गईं जिनमें स्वयं अन्नम्भट्ट की 'दीपिका' अन्यतम है। इन टीकाओं में 'दीपिका' के अतिरिक्त गोवर्धन की 'न्यायबोधिनी', नीलकण्ठ दीक्षित की 'नीलकण्ठी' ( तर्कप्रकाश ) और ग्रन्थार्थ के अवबोधन के लिए चन्द्रज सिंह का 'पदकृत्य' अधिक उपादेय टीकायें हैं। 'न्यायबोधिनी' और 'पदकृत्य' टीकाओं के साथ तर्कसंग्रह अनेक साम्प्रदायिक संस्कृतपरीक्षाओं में निर्धारित है। अतः इन दो टीकाओं के साथ तर्कसंग्रह का यह संस्करण छात्रों के सौविध्य के लिए प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही, चि० शाश्वतानन्द झा द्वारा रचित 'मेधा' नाम की संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या भी इस संस्करण में सम्मिलित है जिससे छात्रों को अनायास ही अर्थबोध हो सके।

इस छात्रोपयोगी संस्करण के प्रकाशन के लिये अकादमी के अध्यक्ष धन्यवादार्ह हैं, क्योंकि आज के युग में व्यावहारिक दृष्टि से उपेक्षित संस्कृत के ग्रन्थों का प्रकाशन-कार्य साधारणतया प्रकाशकों को आकृष्ट नहीं करता।

अन्त में विद्वानों से निवेदन है कि इस संस्करण के सम्पादक तथा हिन्दी-व्याख्याकार शाश्वतानन्द जी की त्रुटियों की उपेक्षा कर उन्हें भविष्य में सरस्वती की सेवा के लिये प्रेरित करें।

संस्कृत विभाग,
का.हि.वि.वि., वाराणसी
रथयात्रा, २८-६-८७

विनीत—
श्रीनारायण मिश्र

॥ श्रीः ॥

# तर्कसंग्रहः

## सटिप्पण-न्यायबोधिनी-पदकृत्य-मेधाहिन्दी-व्याख्यात्रयोपेतः

———०———

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥

---

न्यायबोधिनी

अखिलागमसञ्चारि श्रीकृष्णाख्यं परं महः ।
ध्यात्वा गोवर्धनसुधीस्तनुते न्यायबोधिनीम् ॥ १ ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थादौ निबध्नाति—निधायेति ॥ १ ॥

पदकृत्यम्

श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीशङ्करं परम् ।
मया चन्द्रजसिंहेन क्रियते पदकृत्यकम् ॥
यस्मादिदमहं मन्ये बालानामुपकारकम् ।
तस्माद्धितकरं वाक्यं वक्तव्यं विदुषा सदा ॥

मेधा

मैं अन्नम्भट्ट हृदय में श्री विश्वेश्वर को अच्छी तरह स्थापित करके और गुरुजी महाराज को सादर प्रणाम करके तर्कशास्त्र में बालकों का सुखपूर्वक प्रवेश होने के लिए, 'तर्कसंग्रह' नामक इस ग्रन्थ को बनाता हूँ ॥ १ ॥

## [ १ ] उद्देशप्रकरणम् ।

पदार्थाः कति कानि च तेषां नमानि ?

**द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाऽभावाः सप्त पदार्थाः ।**

---

### न्यायबोधिनी

अथ पदार्थान्विभजते—द्रव्येति । तत्र सप्तग्रहणं 'पदार्थत्वं द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वव्याप्यम्' इति व्याप्तिलाभाय । ननु शक्तिपदार्थस्याष्टमस्य सत्त्वात्कथं सप्तैवेति ? तथाहि—मण्यादिसंयुक्तेन्धनादौ सत्यपि वह्निसंयोगे दाहो न जायते, तच्छून्ये तु जायते, अतो मणिसमवधाने शक्तिर्नश्यति मण्यभावदशायां दाहानुकूला शक्तिरुत्पद्यत इति कल्प्यते, तस्माच्छक्तिरतिरिक्तः पदार्थ इति चेत् ? ( न ) मणेः प्रतिबन्धकत्वेन मण्यभावस्य कारणत्वेनैव निर्वाहे मणिसमवधानासमवधानाभ्यामनन्तशक्तितद्ध्वंसतत्प्रागभावकल्पनाया अन्याय्यत्वात् । तस्मात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम् ।

### पदकृत्यम्

विश्वेशं जगत्कर्तारं श्रीसाम्बमूर्तिं हृदि मनसि निधाय नितरां धारयित्वा, गुरुवन्दनं च विधाय कृत्वेत्यर्थः । बालेति । अत्राधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रो बालः । व्यासादावतिव्याप्तिवारणायाऽनधीतन्यायेति । स्तनन्धयेऽतिप्रसक्तिवारणायाऽधीतव्याकरणेति । सुखेति । सुखेनानायासेन बोधाय पदार्थतत्त्वज्ञानायेत्यर्थः । तर्क्यन्ते प्रमितिविषयीक्रियन्ते इति तर्का द्रव्यादिपदार्थास्तेषां संग्रहः संक्षेपेणोद्देशलक्षणपरीक्षा यस्मिन् स ग्रन्थः । नाममात्रेण वस्तुसङ्कीर्तनमुद्देशः, यथा द्रव्यं गुणा इति । असाधारणधर्मो लक्षणम्, यथा गन्धवत्त्वं पृथिव्याः । लक्षितस्य लक्षणं सम्भवति न वेति विचारः परीक्षा । अत्रोद्देशस्य पक्षज्ञानं फलं, लक्षणस्येतरभेदज्ञानं परीक्षाया लक्षणे दोषपरिहार इति मन्तव्यम् ॥ १ ॥

### मेधा

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव—ये सात पदार्थ हैं ।

द्रव्याणि कति, कानि च तानि ?

**तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ।**

कति गुणाः के च ते ?

**रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्व-**

---

न्यायबोधिनी

द्रव्याणि विभजते—पृथिवीति । नन्वन्धकारस्य दशमद्रव्यस्य सत्त्वात्कथं नवैवेति ? तथाहि–'नीलं तमश्चलति' इति प्रतीतेर्नीलरूपाश्रयत्वेन क्रियाश्रयत्वेन च तमसो द्रव्यत्वं सिद्धम् । न च क्लृप्तद्रव्येष्वन्तर्भावात्कुतो दशमद्रव्यत्वमिति वाच्यम् । तमसो रूपवत्त्वात् आकाशादिपञ्चकस्य वायोश्च नीरूपत्वान्न तेष्वन्तर्भावः । तमसो निर्गन्धत्वात् पृथिव्या गन्धवत्त्वान्न पृथिव्यामन्तर्भावः । तमसो निःस्पर्शवत्त्वात् जलतेजसोः शीतोष्णस्पर्शवत्त्वान्न तयोरन्तर्भावः । तस्मात्तमसो दशमद्रव्यत्वं सिद्धमिति चेत् ? न, तमसस्तेजोऽभावरूपत्वेनैवोपपत्तावतिरिक्ततत्कल्पनायां मानाभावात् । न च विनिगमनाविरहात्तेज एव तमोऽभावस्वरूपमस्त्विवति वाचम् । तेजसोऽभावस्वरूपत्वे सर्वानुभूतोष्णस्पर्शाश्रयद्रव्यान्तरकल्पने गौरवात् । तस्मादुष्णस्पर्शगुणाश्रयतया तेजसो द्रव्यत्वं सिद्धम् । तमसि नीलरूपप्रतीतिस्तु भ्रान्तिरेव । एवं कर्मवत्ताप्रतीतिरपि, दीपापसरणक्रियाया एव तत्र भानात् ।

पदकृत्यम्

तत्रेति । तत्र सप्तपदार्थमध्ये इत्यर्थः । द्रव्याणि नवैवेत्यन्वयः । एवं तत्रेतिपदं चतुर्विंशतिर्गुणा इत्यादिनाऽप्यन्वेति । द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम् ।

मेधा

इनमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य हैं ।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग,

**गुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः ।**

कियन्ति कर्माणि कानि च तानि ?

**उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि ।**

सामान्यं कतिविधम् ?

**परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् ।**

कियन्तो विशेषाः ?

**नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव ।**

---

पदकृत्यम्

परमपरं चेति । परसामान्यमपरसामान्यमित्यर्थः । परत्वं चाधिकदेशवृत्तित्वम् । अपरत्वं न्यूनदेशवृत्तित्वम् ।

तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवरूपदोषत्रयशून्यम्, यथा गोः सास्नादिमत्त्वम् । अव्याप्तिश्च लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम्, अत एव गोर्न कपिलत्वं लक्षणं तस्याव्याप्तिग्रस्तत्वात् । अतिव्याप्तिश्च लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम् । अत एव गोर्न शृङ्गित्वं लक्षणम्, तस्यातिव्याप्तिग्रस्तत्वात् । असम्भवश्च लक्ष्यमात्रावृत्तित्वम् । यथा गोरेकशफवत्त्वं न लक्षणं तस्मासम्भवग्रस्तत्वात् ।

मेधा

परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार—ये २४ गुण हैं ।

उत्क्षेपण [ ऊपर फेंकना ] अपक्षेपण [ नीचे फेंकना ], आकुञ्चन [ समेटना ], प्रसारण [फैलाना] और गमन [जाना] ये पाँच कर्म हैं ।

पर और अपर—दो प्रकार का सामान्य है । अधिक देश में रहने वाला पर सामान्य है । जैसे—सत्ता । अल्प देश मे रहने अपर सामान्य है । जैसे—द्रव्यत्व आदि ।

विशेष नित्य द्रव्य परमाणु आदि में मे रहता है और वह अनन्त है ।

समवायः कतिविधः ?

**समवायस्त्वेक एव ।**

अभावः कतिविधः ?

**अभावश्चतुर्विधः—प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ।**

[ २ ] द्रव्यलक्षणप्रकरणम् ।

पृथिव्याः किं लक्षणं, कति च भेदाः ?

**तत्र गन्धवती पृथिवी । सा द्विविधा—नित्याऽनित्या च । नित्या—परमाणुरूपा । अनित्या—कार्यरूपा । पुनस्त्रिविधा—**

---

न्यायबोधिनी

गन्धवतीति । गन्धवत्त्वं पृथिव्या लक्षणम् । लक्ष्या पृथिवी । पृथिवीत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् । पृथिवीत्वावच्छिन्ना लक्ष्यता, यद्धर्मावच्छिन्नं लक्ष्यं स धर्मो लक्ष्यतावच्छेदकः । यो धर्मो यस्यावच्छेदकः स तद्धर्मावच्छिन्नः । तथा च लक्ष्यतावच्छेदकं पृथिवीत्वं चेल्लक्ष्यता पृथिवीत्वावच्छिन्ना । गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं पृथिव्या लक्षणम् । एवं शीतस्पर्शवत्त्वादिलक्षणेषु जलादीनां लक्ष्यता, जलत्वादीनां लक्ष्यतावच्छेदकत्वं च बोध्यम् ।

पदकृत्यम्

नित्येति । ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वम् । ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ध्वंसभिन्नेति विशेषणम् । घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्य-

मेधा

समवाय-एक ही है ।

अभाव चार प्रकार का है—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव ।

जिसमें गन्ध समवाय सम्बन्ध से रहता हो वह पृथिवी है । वह दो प्रकार की है—नित्य और अनित्य । परमाणुरूप पृथिवी नित्य है । और घट आदि कार्यरूप पृथिवी अनित्य है । अनित्य पृथिवी तीन प्रकार की है—

**शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमस्मदादीनाम् । इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति । विषयो मृत्पाषाणादिः ।**

जलस्य किं लक्षणं, कति च भेदाः ?

**शीतस्पर्शवत्य आपः । ता द्विविधाः—नित्या अनित्याश्च । नित्याः-परमाणुरूपाः । अनित्याः—कार्यरूपाः । पुनस्त्रिविधाः—शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वरुणलोके । इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति । विषयः सरित्समुद्रादिः ।**

---

पदकृत्यम्

दलम् । ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वाऽनित्यत्वम् । शरीरेति । यद्भोगायतनं तदेव शरीरं, चेष्टाश्रयो वा । इन्द्रियमिति । चक्षुरादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धग्राहकमिति । कालादावतिप्रसक्तिवारणायेन्द्रियमिति । विषय इति । शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सत्युपभोगसाधनं विषयः । शरीरादावतिव्याप्तिनिरासाय सत्यन्तम् । परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् । कालादिवारणाय जन्यत्वे सतीत्यपि बोध्यम् ।

शीतेति । तेज आदावतिव्याप्तिवारणाय शीतेति । आकाङ्क्षावारणाय स्पर्शेति । कालादावतिप्रसक्तिवारणाय समवायसम्बन्धेनेति पदं देयम् । इन्द्रियमिति । त्वगादावतिव्याप्तिवारणाय रसग्राहकमिति । रसनेन्द्रियरससन्निकर्षादावतिव्याप्तिनिरासायेन्द्रियमिति । सरिदिति । आदिना तडागहिमकरकादीनां संग्रहः ।

मेधा

शरीर, इन्द्रिय, विषय । हम लोगों का शरीर पार्थिव है । गन्ध-ग्राहक घ्राणेन्द्रिय पार्थिव इन्द्रिय है, जो नाक के अग्रभाग में रहती है । घट, पट, मिट्टी, पत्थर फूल आदि सब पार्थिव विषय हैं ।

शीतल स्पर्श जिसमें रहे वह जल है । यह दो प्रकार का है—नित्य और अनित्य । परमाणुरूप जल नित्य है । कार्यरूप [स्थूल] जल अनित्य है । कार्य-जल शरीर, इन्द्रिय, विषय भेद से तीन तरह का है । जलीय शरीर वरुणलोक में प्राप्त होता । रस का प्रत्यक्ष कराने वाली रसना जलीय इन्द्रिय है । अन्य सरोवर, समुद्र आदि जलीय विषय हैं ।

तेजसः किं लक्षणं, कति च भेदाः ?

**उष्णस्पर्शवत्तेजः। तच्च द्विविधम्—नित्यमनित्यं च। नित्यं-परमाणुरूपम्। अनित्यं—कार्यरूपम्। पुनस्त्रिविधं-शरीरेन्द्रिय-विषयभेदात्। शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति। विषयश्चतुर्विधो-भौमदिव्योदर्याकरजभेदात्। भौमं वह्न्यादिकम्। अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि। भुक्तस्य परिणामहेतु-रुदर्यम्। आकरजं सुवर्णादि।**

वायोः किं लक्षणं, कति च भेदाः ?

**रूपरहितस्पर्शवान् वायुः। स द्विविधः—नित्योऽनित्यश्च। नित्यः—**

---

न्यायबोधिनी

एवं पृथिव्यादित्रिकं निरूप्य वायुं निरूपयति—रूपरहित इति।

पदकृत्यम्

उष्णेति। जलादावतिव्याप्तिनिरासायोष्णेति। कालादावतिप्रसङ्गवारणाय समवायसम्बन्धेनेति पदं देयम्। इन्द्रियमिति। घ्राणादावतिप्रसङ्गवारणाय रूपग्राहकमिति। भेदादितिपदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते। भौममिति। भुक्तेति। भुक्तस्यान्नादेः पीतस्य जलस्य परिणामो जीर्णता तस्य हेतुरुदर्यमित्यर्थः। सुवर्णेति। आदिना रजतादिपरिग्रहः।

रूपेति। घटादिवारणाय विशेषणम्। आकाशादिवारणाय विशेष्यम्।

मेधा

उष्ण स्पर्शवाला द्रव्य तेज है। इसके दो भेद हैं—नित्य और अनित्य। परमाणुस्वरूप तेज नित्य है। तैजस द्व्यणुक आदि उत्पन्न होने से अनित्य तेज हैं। अनित्य तेज के तीन प्रभेद हैं—शरीर, इन्द्रिय और विषय।

तैजस शरीर सूर्यलोक में प्रसिद्ध है। रूप को बताने वाली चक्षु तैजस इन्द्रिय है जो आँख की कृष्णतारा के अग्रिम भाग में रहती है। तैजस विषय चार तरह का है—भौम, दिव्य, उदर्य और आकरज। अग्नि आदि भौम तेज हैं। जल से उत्पन्न होने वाली बिजली दिव्य तेज है। भोजन पचाने वाला उदरस्थ तेज उदर्य है। खान से निकले हुए सोना आदि आकरज तेज हैं।

**परमाणुरूपः। अनित्यः—कार्यरूपः। पुनस्त्रिविधः—शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरं वायुलोके। इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति। विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः। शरीरान्तःसञ्चारी वायुः प्राणः। स**

---

### न्यायबोधिनी

रूपरहितत्वे सति स्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम्। सतिसप्तम्या विशिष्टार्थकतया सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविशिष्टस्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम्। विशेषणांशानुपादाने स्पर्शवत्त्वमात्रस्य लक्षणत्वे पृथिव्यादित्रिकेऽतिव्याप्तिः, तत्रापि स्पर्शवत्त्वसत्त्वादतस्तद्वारणाय विशेषणोपादानम्। तावन्मात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिः, तत्रापि रूपरहितत्वसत्त्वादतस्तद्वारणाय विशेष्योपादानम्। अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम्, यथा गोः शृङ्गित्वं लक्षणं कृतं चेल्लक्ष्यभूतगोभिन्नमहिष्यादावतिव्याप्तिस्तत्रापि शृङ्गित्वस्य विद्यमानत्वात्। अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम्, लक्ष्यैकदेशे लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतक्वचिल्लक्ष्ये लक्षणासत्त्वमव्याप्तिरित्यर्थः, यथा गोर्नीलरूपवत्त्वं लक्षणं कृतं चेल्लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतश्वेतगवि अव्याप्तिस्तत्र नीलरूपाभावात्। असम्भवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्त्वम्, यथा गोरेकशफवत्त्वं लक्षणं कृतं चेद् गोसामान्यस्य द्विशफवत्त्वेन एकशफवत्त्वस्य

### पदकृत्यम्

इद्रियमिति। चक्षुरादिवारणाय स्पर्शग्राहकमिति। कालादावतिव्याप्तिवारणायेन्द्रियमिति। वृक्षेति। आदिपदेन जलादिपरिग्रहः। शरीरान्तरिति। महावाय्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम्। मनआदिवारणाय

### मेधा

जो रूप से रहित हो परन्तु स्पर्श वाला हो वह वायु है। यह वायु नित्य और अनित्य दो प्रकार का है। इनमें परमाणुस्वरूप वायु नित्य है। कार्यरूप वायु अनित्य है।

अनित्य वायु तीन तरह का है—शरीर, इन्द्रिय और विषय। वायवीय शरीर वायुलोक में है। वायवीय इन्द्रिय त्वगिन्द्रिय है, जो सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान है और उससे ठंढे गर्म आदि स्पर्श का प्रत्यक्ष होता है। वृक्ष

**चैकोऽप्युपाधिभेदात् प्राणापानादिसंज्ञां लभते ।**

आकाशस्य किं लक्षणं, कतिविधं च तत् ?

**शब्दगुणकमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ।**

कालस्य किं लक्षणं, कति च भेदाः ?

**अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ।**

---

## न्यायबोधिनी

कुत्राप्यसत्त्वादसम्भवः । अतिव्याप्त्यव्याप्त्यसम्भवानां निष्कृष्टलक्षणानि तु लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणत्वे सति लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यमतिव्याप्तिः । अव्याप्तिस्तु—लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणत्वे सति लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम् । असम्भवस्तु लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् ।

आकाशं लक्षयति—शब्दगुणकमिति । अत्र गुणपदमाकाशे शब्द एव विशेषगुण इति द्योतनाय न त्वतिव्याप्तिवारणाय, समवायेन शब्दवत्त्वमात्रस्य

## पदकृत्यम्

विशेष्यम् । धनञ्जयवारणाय सञ्चारीति । उपाधीति । मुखनासिकाभ्यां निर्गमनप्रवेशनात्प्राणः, जलादेरधोनयनादपानः, भुक्तपरिणामाय जाठरानलस्य समुन्नयनात्समानः, अन्नादेरूर्ध्वनयनादपानः, नाडीमुखेषु विततनाद् व्यानः, इति क्रियारूपोपाधिभेदात्तथा व्यवह्रियत इत्यर्थः ।

शब्देति । शब्दो गुणो यस्य तत्तथा । असम्भववारणाय शब्दगुणोभयम् ।

विभ्विति । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगीत्यर्थः ।

अतीतेति । अतीत इत्यादिर्यो व्यवहारोऽतीतो भविष्यन्वर्तमान इत्याद्या-

## मेधा

आदि को कँपाने वाला वायु विषय है । शरीर के भीतर संचार करने वाला वायु प्राण है । वह एक है । परन्तु हृदय, नाभि आदि स्थानों के भेद से इसी के प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—ये पाँच नाम हो जाते ।

समवाय समबन्ध से शब्दस्वरूप गुण जिसमें रहे वह आकाश है । वह आकाश एक है—सर्वव्यापक है—और नित्य है ।

दिशः किं लक्षणं, कतिविधा च सा ?

**प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका नित्या विभ्वी च ।**

---

न्यायबोधिनी

सम्यक्त्वात् । तदुक्तम्—

रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः ।
बुद्ध्यादिभावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः ॥ इति ॥

तच्चैकमिति । अनेकत्वे मानाभावादिति भावः । विभ्विति । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम् । मूर्तत्वं च क्रियावत्त्वम् । पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि मूर्तानि । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेतिपञ्चकं भूतपदवाच्यम् । भूतत्वं नाम बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम् ।

कालं लक्षयति–अतीतेति । व्यवहारहेतुत्वस्य लक्षणत्वे घट इति व्यवहारहेतुभूतघटादावतिव्याप्तिः । तद्वारणाय अतीतादीति विशेषणोपादानम् ।

दिशो लक्षणमाह—प्राच्येति । उदयाचलसन्निहिता या दिक् सा प्राची । अस्ताचलसन्निहिता या दिक् सा प्रतीची । मेरोः सन्निहिता या दिक् सोदीची । मेरोर्व्यवहिता या दिक् साऽवाची ।

पदकृत्यम्

त्मकस्तस्यासाधारणहेतुः काल इत्यर्थः । नन्विदं लक्षणमाकाशेऽतिव्याप्तं व्यवहारस्य शब्दात्मकत्वादिति चेत् ? न, अत्र हेतुपदेन निमित्तहेतोर्विवक्षितत्वात् । न चैवं कण्ठताल्वाद्यभिघातेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यम् । विभुत्वस्यापि निवेशात् ।

प्राचीति । इयं प्राचीयमर्वाचीयं प्रतीचीयमुदीचीत्यादिव्यवहारासाधारणं

मेधा

अतीत [भूत], आगामी, [भविष्यत्], आदि व्यवहारों का हेतु जो द्रव्य है वह काल है । यह काल एक सर्वव्यापी और नित्य है ।

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण आदि व्यवहारों का जो द्रव्य हेतु है वह दिशा है । वह एक है—सर्वव्यापक है—और नित्य है ।

आत्मनः किं लक्षणं, कतिविधश्च सः ?

**ज्ञानाधिकरणमात्मा। स द्विविधः—जीवात्मा परमात्मा चेति। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव। जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च।**

मनसः किं लक्षणं, कतिविधं च तत् ?

**सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः। तच्च प्रत्यात्मनियतत्वाद-नन्तं परमाणुरूपं नित्यं च।**

---

न्यायबोधिनी

आत्मानं निरूपयति—ज्ञानाधिकरणमिति। अधिकरणपदं समवायेन ज्ञानाश्रयत्वलाभार्थम्।

मनो निरूपयति—सुखादीति। उपलब्धिर्नाम साक्षात्कारः, तथा च

पदकृत्यम्

कारणं दिगित्यर्थः। हेतुर्दिगित्युच्यमाने परवाण्वादावतिव्याप्तिः स्यात्त-द्वारणाय प्राच्यादिव्यवहारहेतुरिति। आकाशादिवारणायासाधारणेति।

ज्ञानाधिकरणेति। भूतलादिवारणाय ज्ञानेति। कालादिवारणाय समवायेनेत्यपि देयम्। ईश्वर इति। समवायसम्बन्धेन नित्यज्ञान-वानीश्वरः। जीव इति। सुखादिसमवायिकारणं जीव इत्यर्थः।

सुखेति। आत्ममनःसंयोगादिवारणायेन्द्रियमिति। चक्षुरादिवारणाय सुखेति।

मेधा

समवाय सम्बन्ध से जिस द्रव्य में ज्ञान उत्पन्न हो वह आत्मा है। यह दो तरह का है—जीवात्मा और परमात्मा। परमात्मा ही ईश्वर है। यह सर्वज्ञ है और एक है। जीवात्मा—प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न है। यह भी व्यापक है और नित्य।

जिस इन्द्रिय से सुख और दुःख का साक्षात्कार होता है उसका नाम मन है। यह प्रत्येक जीवात्मा के साथ भिन्न-भिन्न है। अतएव अनन्त है। यह मन परम अणु रूप है और नित्य है।

## [३] गुणलक्षणम् ।

रूपस्य किं लक्षणं, कतिविधं च तत् ?

**चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम् । तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरित-**

---

### न्यायबोधिनी

सुखदुःखादिसाक्षात्कारकारणत्वे सति इन्द्रियत्वं मनसो लक्षणम् । इन्द्रियत्वमात्रोक्तौ चक्षुरादावतिव्याप्तिः, अतः सुखादिसाक्षात्कारकारणत्वविशेषणम् । विशेष्यानुपादाने आत्मन्यतिव्याप्तिः, आत्मनः सुखादिकं प्रति समवायिकारणत्वात्, अत इन्द्रियत्वरूपविशेष्योपादानम् ।

रूपं लक्षयति –चक्षुरिति । चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्ववत्त्वं रूपस्य लक्षणम् । विशेष्यमात्रोपादाने रसादावतिव्याप्तिः, अतश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशेषणम् । तावन्मात्रोपादाने रूपत्वेऽतिव्याप्तिः, 'यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठा जातिस्तदिन्द्रियग्राह्या' इति नियमात् । तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नाम चक्षुर्भिन्नेन्द्रियाग्राह्यत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यत्वम् । मात्रपदानुपादाने संख्यादिसामान्यगुणेऽतिव्याप्तिः, तत्रापि चक्षुर्ग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्वस्य सत्त्वात्, अतस्तद्वारणाय मात्रपदम् । संख्यादेश्चक्षुर्भिन्नत्वगिन्द्रियग्राह्यत्वाच्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नास्ति । अतीन्द्रियगुरुत्वादावतिव्याप्तिवारणाय चक्षुर्ग्राह्येति । अत्र लक्षणे ग्राह्यत्वं नाम प्रत्यक्षविषयत्वम् । अग्राह्यत्वं नाम तदविषयत्वम्, तथा च चक्षुर्भिन्नेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयत्वे सति चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षविषयत्वमिति फलितोऽर्थः । ननु प्रभाघटसंयोगे रूपलक्षणस्यातिव्या-

### पदकृत्यम्

चक्षुरिति । रूपत्वादिवारणाय गुणपदम् । रसादिवारणाय चक्षुर्ग्राह्य इति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् । यद्यपि प्रभाभित्तिसंयोगवारणाय गुणपदेन विशेषगुणस्य विवक्षणीयतया तत एव संख्यादिवारणं सम्भवतीति मात्रपदं व्यर्थम् । तथापि सांसिद्धिकद्रवत्ववारणाय तदावश्यकम् । वस्तुतस्तु

### मेधा

जिस गुण का नेत्र से प्रत्यक्ष होता है वह रूप है । वह शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र भेद से सात प्रकार का है । वह रूप

**कपिशचित्रभेदात् सप्तविधम् । पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वर-शुक्लं जले । भास्वरशुक्लं तेजसि ।**

रसस्य किं लक्षणं, कतिविधश्च सः ?

**रसनाग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्त-**

---

न्यायबोधिनी

प्तिस्तस्य चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणत्वादिति चेत् ? न, गुणपदस्य विशेषगुणपरत्वात् । न चैवं विशेषगुणत्वघटितलक्षणे संख्यादावतिव्याप्त्यभावान्मात्रपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । जलमात्रवृत्तिसांसिद्धिकद्रवत्वादावतिव्याप्तिवारणाय तदुपादानात् ।

अथवा चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमद्गुणत्वस्य लक्षणत्वान्न प्रभाघटसंयोगादावतिव्याप्तिः । संयोगत्वजातेश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वाभावात् । घटपटसंयोगस्य त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात्तद्गतजातेरपि त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात् । (यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठजातेरपि तदिन्द्रियग्राह्यत्वात् । ) अत्र जातिघटितलक्षणे गुणत्वानुपादाने चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमति सुवर्णादौ अतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय तदुपादानम् । एवं रसादिलक्षणे विशेषणानुपादाने लक्ष्यभिन्नगुणादावति-

पदकृत्यम्

परमाणुरूपेऽव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वस्य विवक्षणीयतया विशेषपदं न देयम् । त्र्यणुकादिवारणाय गुणपदं तु देयम् । सप्तेति । रूपमित्यनुषज्यते ।

रसनेति । रसत्वादिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय रस-

मेधा

पृथिवी जल और तेज में रहता है । पर पृथिवी में सातों प्रकार का रूप है । जल में अभास्वर शुक्ल रूप [ विना चमक वाला सफेद रंग ] है, और तेज में भास्वर शुक्ल [ चमकीला और प्रकाशक ] रूप है ।

जिह्वा [रसनेन्द्रिय] से जिस गुण का प्रत्यक्ष हो वह रस है । वह मधुर अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त भेद से ६ प्रकार का है । वह रस पृथिवी और जल में रहता है । परन्तु पृथिवी में ६ प्रकार का रस है । जल में केवल एक ( अव्यक्त ) मधुर रस ही है ।

भेदात् षड्विधः। पृथिवीजलवृत्तिः। तत्र पृथिव्यां षड्विधः। जले मधुर एव।

गन्धस्य किं लक्षणं, कति च भेदाः ?

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः। स द्विविधः—सुरभिरसुरभिश्च। पृथिवीमात्रवृत्तिः।

स्पर्शस्य किं लक्षणं के च भेदाः ?

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः। स च त्रिविधः—शीतोष्णाऽनु-

---

न्यायबोधिनी

व्याप्तिः, विशेष्यानुपादाने लक्ष्यमात्रवृत्तिरसत्वगन्धत्वादावतिव्याप्तिः। अतो विशेषणविशेष्ययोरुपादानम्।

स्पर्शं लक्षयति—त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्य इति। तत्रापि मात्रपदं संख्यादिसामान्यगुणादावति व्याप्तिवारणाय। अन्यविशेषकृत्यं पूर्ववद्बोध्यम्। ग्राह्यत्वपदार्थोऽपि पूर्वत्रदेव प्रत्यक्षविषयत्वरूप एव बोध्यः।

पदकृत्यम्

नेति। तत्रेति। पृथिवीजलयोरित्यर्थः। षड्विध इति। अत्र रस इत्यनुवर्तते।

घ्राणग्राह्य इति। गन्धत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय घ्राणग्राह्य इति। पृथिवीति। पृथिवीसम्बन्धसत्त्वे गन्धप्रतीतिसत्त्वं पृथिवीसम्बन्धाभावे गन्धप्रतीत्यभावः इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवीगन्धस्यैव जले प्रतीतिर्बोध्या। एवं वायावपि। ननु देशान्तरस्थकस्तूरीकुसुमसम्बन्धपवनस्यैतद्देशे सत्त्वात्कुसुमादिसम्बन्धप्रतीत्यनुपपत्तिः। न

मेधा

घ्राण इद्रिय [नाक] से जिस गुण का ज्ञान हो वह गन्ध है। वह गन्ध दो प्रकार का होता है—सुगन्धि और दुर्गन्धि। गन्ध केवल पृथिवी में रहती है।

केवल त्वगिन्द्रिय से जिस गुण का प्रत्यक्ष हो वह स्पर्श है। स्पर्श तीन

**ष्णाऽशीतभेदात् । पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः । तत्र शीतो जले । उष्ण-स्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः ।**

रूपादिचतुष्टयं कुत्र पाकजमपाकजं वा कुत्र ?

**रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च । अन्यत्रापाकजं**

---

न्यायबोधिनी

रूपादिचतुष्टयमिति । एतत्तत्त्वनिर्णयश्चेत्थम्—पाको नाम विजातीयतेजःसंयोगः । स च नानाजातीयः । रूपजनको विजातीयस्तेजःसंयोगः, तदपेक्षया रसजनको विजातीयस्तेजःसंयोगः, एवं गन्धजनकोपि ततो विजातीय एव, एवं स्पर्शजनकोऽपि तथैव । एवं प्रकारेण भिन्नभिन्नजातीयाः पाकाः कार्यवैलक्षण्येन कल्पनीयाः । यथा तृणपुञ्जनिक्षिप्त आम्रादौ ऊष्मलक्षणविजातीयतेजःसंयोगात्पूर्वहरितरूपनाशे रूपान्तरस्य पीतादेरुत्पत्तिः पूर्वरसस्याम्लस्यैवानुभवात् । क्वचित्पूर्वहरितसत्त्वेऽपि रसपरावृत्तिर्दृश्यते, विजातीयतेजःसंयोगरूपपाकवशात्पूर्वतनाम्लरसनाशेन मधुररसस्यानुभवात् ।

पदकृत्यम्

च वाय्वानीतत्र्यणुकादिसम्बन्धोऽस्त्येवेति वाच्यम् । कस्तूर्या न्यूनतापत्तेः, कुसुमस्य च सच्छिद्रत्वापत्तेरिति चेत् ? न, भोक्त्रदृष्टविशेषेण पूर्ववत्त्र्यणुकान्तराद्युत्पत्तेः, कर्पूरादौ तु तदभावान्न तथात्वमिति ।

स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय त्वगिन्द्रियेति । सङ्ख्यादिवारणाय मात्रपदम् । तत्रेति । पृथिव्यादिचतुष्टये । शीत इति शीतस्पर्शः । उष्ण इति उष्णस्पर्शः ।

मेधा

प्रकार का है—शीत [ ठंडा ], उष्ण [गर्म], अनुष्णाशीत [न ठंढा न गर्म] वह स्पर्श पृथिवी, जल, तेज और वायु में रहता है । जल में शीत स्पर्श, तेज में उष्ण स्पर्श, पृथिवी और वायु में अनुष्णाऽशीतस्पर्श ।

पृथिवी में-रूप रस गन्ध स्पर्श–ये चारो गुण पाकज [ अग्नि आदि तेज के संयोग से उत्पन्न होने वाले ] हैं और अनित्य हैं । जल, तेज वायु में—रूप आदि चारो गुण अपाकज हैं । जल तेज वायु में रहने वाले यथासम्भव

**नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् ।**

सङ्ख्यायाः किं लक्षणम् कुत्र च सा वर्तते ?

**एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या । सा नवद्रव्यवृत्तिः । एकत्वादि-**

न्यायबोधिनी

तस्माद्रूपजनकापेक्षया रसजनको विलक्षण एवाङ्गीकार्यः । एवं गन्धजनको विलक्षण एव, रूपरसयोरपरावृत्तावपि पूर्वगन्धनाशे विजातीयपाकवशात्सुरभिगन्धोपलब्धेः । एवं स्पर्शजनकोऽपि, पाकवशात्कठिनस्पर्शनाशे मृदुस्पर्शानुभवात् । तस्माद्रूपादिजनका विजातीया एव पाकाः यथाकार्यमुन्नेयाः । अत एव पार्थिवपरमाणूनामेकजातीयत्वेपि पाकमहिम्ना बिजातीयद्रव्यान्तरानुभवः । यथा गोभुक्ततृणादीनामापरमाण्वन्तभङ्गे तृणारम्भकपरमाणुषु विजातीयतेजःसंयोगात्पूर्वरूपादिचतुष्टयनाशे तदनन्तरं दुग्धे यादृशं रूपादिकं वर्तते तादृशरूपरसगन्धस्पर्शजनकास्तेजःसंयोगा जायन्ते, तदुत्तरं तैरेव तादृशरूपरसादिविशिष्टपरमाणुभिर्दुग्धद्व्यणुकमारभ्यते, ततस्त्र्यणुकादिक्रमेण महादुग्धारम्भकैः परमाणुभिरेव दध्यारभ्यते । (एवं) पाकमहिम्ना दध्यारम्भकैरेव परमाणुभिर्नवनीतादिकमिति दिक् ॥

पदकृत्यम्

एकत्वादीति । एकत्वमित्यादिर्यो व्यवहारः एको द्वावित्याद्यात्मकस्तस्य हेतुः सङ्ख्या इत्यर्थः । घटादिवारणाय एकत्वादीति । कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम् । ननु सङ्ख्याया अवधिरस्ति न वेत्यत आह—एकत्वादीति । तथाच—

एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा ।
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥

मेधा

रूप रस स्पर्श गुण नित्य और अनित्य—दोनो तरह के हैं । परमाणु में रहने वाले रूप आदि नित्य हैं । स्थूल जलादि-गत रूप आदि तीनों गुण अनित्य हैं ।

**परार्धपर्यन्ता। एकत्वं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतमनित्यम्। द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव।**

परिमाणस्य किं लक्षणं के च तस्य भेदाः?

**मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम्। नवद्रव्यवृत्ति। तच्चतुर्विधम्—अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति।**

पृथक्त्वस्य किं लक्षणम्?

**पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम्। सर्वद्रव्यवृत्ति।**

---

पदकृत्यम्

वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्॥

मानेति। मानं परिमितिस्तस्या यो व्यवहारः—इदं महदिदमणु इत्याद्यात्मकः तस्य कारणं परिमाणमित्यर्थः। दण्डादिवारणाय मानेति। कालादिवारणायासाधारणेति। शब्दत्ववारणाय कारणमिति। नवद्रव्येति। चतुर्विधमपि परमध्यभेदेन द्विविधम्। तत्र परमाणुह्रस्वत्वे परमाणुमनसोः। मध्यमाणुह्रस्वत्वे द्व्यणुके। परममहत्त्वदीर्घत्वे गगनादौ। मध्यममहत्त्वदीर्घत्वे घटादौ। एतन्मौक्तिकमण्विति व्यवहारस्यापकृष्टमहत्त्वाश्रयत्वाद्गौणत्वं बोध्यम्। एवमेव केतनाद्व्यजनं ह्रस्वमित्यत्रापि निकृष्टदीर्घत्वाद् गौणत्वम्॥

मेधा

एक, दो, तीन इत्यादि व्यवहार का असाधारण कारण संख्या है। संख्या नौ द्रव्यों में रहती है। और वह एक से परार्ध तक है। उनमें एकत्व संख्या नित्य अनित्य दोनों तरह की है। परमाणु और आकाश आदि नित्य द्रव्यों में रहने वाला एकत्व नित्य है। घट, पट आदि अनित्य द्रव्यों में रहने वाला एकत्व अनित्य है। द्वित्व आदि सभी सङ्ख्या तो अनित्य ही हैं।

सेर, दो सेर इत्यादि नापने-तौलने के व्यवहार में प्रधान हेतु जो गुण हो वही परिमाण है। यह नौ द्रव्यो में रहता है। परिमाण चार प्रकार का है—अणुत्व, महत्त्व, दीर्घत्व और ह्रस्वत्व।

संयोगस्य किं लक्षणम् ?

**संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ।**

विभागस्य किं लक्षणम् ?

**संयोगनाशको गुणो विभागः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ।**

---

न्यायबोधिनी

विभागं लक्षयति—संयोगेति । संयोगनाशकत्वविशिष्टगुणत्ववत्त्वं विभागस्य लक्षणम् । विशेषणमात्रोपादाने क्रियाया अपि संयोगनाशकत्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वारणाय गुणत्ववत्त्वमिति विशेष्योपादानम् ।

पदकृत्यम्

पृथगिति । अयमस्मात्पृथगिति यो व्यवहारस्तस्य कारणं पृथक्त्वमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय पृथगित्यादि । कालादिवारणायासाधारणेति । पृथग्व्यवहारत्ववारणाय कारणमिति ।

संयुक्तेति । इमौ संयुक्ताविति यो व्यवहारस्तस्य हेतुः संयोग इत्यर्थः । दण्डादिवारणाय संयुक्तव्यवहारेति । कालादिवारणायासारणेत्यपि देयम् । संयुक्तव्यवहारत्वेऽतिप्रसक्तिवारणाय हेतुरिति । उपदर्शितलक्षणचतुष्टयेऽसाधारणपदं देयम् ।

संयोगेति । संयोगनाशजनक इत्यर्थः । कालेऽतिप्रसक्तिवारणाय गुणपदम् । ईश्वरेच्छादिवारणायासाधारणेत्यपि बोध्यम् । ननु असाधारणपदोपादाने गुणपदस्य वैयर्थ्यं स्यादिति चेत् ? न, क्रियायामतिप्रसक्तिवारणाय तस्याप्यावश्यकत्वात् ॥

मेधा

यह घट पट से पृथक् है इत्यादि व्यवहार का मुख्य हेतु गुण पृथक्त्व है । यह नौ द्रव्यों में रहता है ।

'ये दो पदार्थ मिले हुये हैं' इत्यादि व्यवहार का असाधारण कारण गुण संयोग है । संयोग सभी [नवों] द्रव्यों में रहता है ।

संयोग का नाश करने वाला गुण विभाग है । यह भी नौ द्रव्यों में रहता है ।

परत्वापरत्वयोः किं लक्षणं, के च भेदाः ?

**परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे । पृथिव्यादिचतुष्टय-मनोवृत्तिनी । ते च द्विविधे—दिक्कृते कालकृते चेति । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम्, समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम् । ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम्, कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम् ॥**

गुरुत्वस्य किं लक्षणम् कुत्र च तत् ?

**आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् । पृथिवीजलवृत्ति ।**

---

न्यायबोधिनी

गुरुत्वं लक्षयति—आद्येति । द्वितीयपतनक्रियायां वेगस्यासमवायिकारणत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायाद्येति । उत्तरत्र स्यन्दने आद्यत्वविशेषणमपि पूर्ववदेव योजनीयम् ॥

पदकृत्यम्

परेति । परव्यवहारासाधारणं कारणं परत्वम् । अपरव्यवहारासाधारणं कारणमपरत्वमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय परव्यवहारेति । कालादिवारणायासाधारणेति । परव्यवहारत्ववारणाय कारणेति । एवमेव द्वितीयेऽपि बोध्यम् ।

आद्येति । दण्डादिवारणायासमवायीति । रूपादिवारणाय पतनेति । वेगेऽतिव्याप्तिवारणाद्येति ॥

मेधा

'यह पर [दूर] है' इत्यादि व्यवहार का हेतु गुण परत्व है, 'यह अपर [समीप] है' इस व्यवहार का हेतु गुण अपरत्व है । परत्व और अपरत्व ये दोनों पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन में रहते हैं । ये दो तरह के हैं—दिक्कृत और कालकृत । दूरस्थित घट आदि पदार्थ में दिक्कृत परत्व है । समीपस्थ पदार्थ में दिक्कृत अपरत्व है । ज्येष्ठ [ बड़े ] में कालकृत परत्व, कनिष्ठ [छोटे] में कालकृत अपरत्व है ।

आद्य पतन [ प्रथम गिरने की क्रिया ] का असमवायिकारण गुण गुरुत्व है । वह पृथिवी और जल में रहता है ।

द्रवत्वस्य किं लक्षणं के च भेदाः ?

**आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजोवृत्ति । तद्-द्विविधम्—सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वम्, तेजसि सुवर्णादौ ॥**

स्नेहस्य किं लक्षणम्, कुत्र च सः ?

**चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः । जलमात्रवृत्तिः ॥**

---

न्यायबोधिनी

स्नेहं लक्षयति—चूर्णादीति । पिण्डीभावहेतुत्वे सति गुणत्वं स्नेहस्य लक्षणम् । पिण्डीभावो नाम चूर्णादेर्धारणाकर्षणहेतुभूतो विलक्षणः संयोगः । तादृशसयोगे स्नेहस्यैवासाधारणकारणत्वं न तु जलादिगतद्रवत्वस्य, तथा सति द्रुतसुवर्णादिसंयोगेन चूर्णादेः पिण्डीभावापत्तेः, अतः स्नेह एवासाधारणं

पदकृत्यम्

आद्यस्यन्दनेति । दण्डादिवारणायासमवायीति । रसादिवारणाय स्यन्दनेति ।

चूर्णादीति । चूर्णं पिष्टं तदेवादिर्यस्य मृत्तिकादेः स चूर्णादिस्तस्य

मेधा

आद्य स्यन्दन (बहना) का असमवायिकारण गुण द्रवत्व है । वह पृथिवी और तेज में रहता है । द्रवत्व दो प्रकार का है–सांसिद्धिक [स्वाभाविक] और नैमित्तिक [ अग्नि आदि के संयोग से होने वाला ] । सांसिद्धिक द्रवत्व जल में रहता है । नैमित्तिक द्रवत्व पृथिवी और तेज में रहता है । जैसे घृत, लाक्षा, मोम और सुवर्ण आदि पदार्थों में नैमित्तिकद्रवत्व है, क्योंकि उनमें अग्नि के संयोग से ही द्रवत्व होता है । किन्तु जल में स्वाभाविक द्रवत्व है ।

चूना, चूर्ण आदि पिसी हुई चीजों को मिलाकर गोली बनाने वाला गुण स्नेह है । यह स्नेह केवल जल में रहता है ।

शब्दस्य किं लक्षणं, कतिविधश्च सः ?

**श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः । आकाशमात्रवृत्तिः । स द्विविधः—ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च । तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः ॥**

---

न्यायबोधिनी

कारणम् । विशेषणमात्रोपादाने कालादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । वस्तुतस्तु द्रुतजलसंयोगस्यैव चूर्णादिपिण्डीभावहेतुत्वं स्नेहस्य पिण्डीभावहेतुत्वे मानाभावात् । जले द्रुतत्वविशेषणात्करकादिव्यावृत्तिः ।

शब्दं लक्ष्यति—श्रोत्रेति । शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणात श्रोत्रेति । स त्रिविधः—संयोगजो विभागजः शब्दजश्चेति यथा भेरीदण्डसंयोगजो झाङ्कारादिशब्दः, हस्ताभिघातसंयोगजन्यो मृदङ्गादिशब्दः । वंशे पाट्यमाने दलद्वयविभागजश्चटचटाशब्दः । शब्दोत्पत्तिदेशमारभ्य श्रोत्रदेशपर्यन्तं वीचीतरङ्गन्यायेन कदम्बमुकुलन्यायेन वा निमित्तपवनेन शब्दधारा जायते, तत्र उत्तरोत्तरशब्दे पूर्वपूर्वशब्दः कारणम् ।

पदकृत्यम्

पिण्डीभावः संयोगविशेषस्तस्य हेतुर्निमित्तकारणं स्नेह इत्यर्थः । कालादावतिव्याप्तिवारणाय पिण्डीभावेति । चूर्णपदं स्पष्टार्थम् ।

श्रोत्रेति । शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादिवारणाय श्रोत्रग्राह्य इति ।

वस्तुतस्तु श्रोत्रोत्पन्नशब्दस्यैव श्रोत्रग्राह्यत्वेन तद्भिन्नेऽव्याप्तिवारणाय श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वे तात्पर्याद् गुणपदमनुपादेयमेव ॥

मेधा

जिस गुण का श्रोत्रेन्द्रिय ( कान ) से प्रत्यक्ष होता है वह शब्द है । यह केवल आकाश में रहता है । यह दो प्रकार का है—ध्वनि और वर्ण । भेरी (नगाड़ा) आदि से उत्पन्न शब्द ध्वनि कहलाता है । स्वर-व्यञ्जन की स्पष्टता से युक्त संस्कृत आदि भाषास्वरूप शब्द वर्णात्मक है ।

बुद्धेः किं लक्षणं कतिविधा च सा ?

**सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम् । सा द्विविधा—स्मृतिरनुभवश्च ॥**

स्मृतेः किं लक्षणम् ?

**संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः ॥**

---

न्यायबोधिनी

बुद्धेर्लक्षणमाह—सर्वव्यवहारेति । व्यवहारः शब्दप्रयोगः । ज्ञानं विना शब्दप्रयोगासम्भवाच्छब्दप्रयोगरूपंव्यवहारहेतुत्वं ज्ञानस्य लक्षणम् । बुद्धिं विभजते—सा द्विविधेति ।

स्मृतिं लक्षयति—संस्कारेति । बहिरिन्द्रियान्यत्वविशिष्टसंस्कारजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वं स्मृतेर्लक्षणम् । संस्कारजन्यत्वविशेषणानुपादाने प्रत्यक्षानुभवेऽतिव्याप्तिस्तद्वारणाय विशेषणोपादानम् । संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्योपादानम्, ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वात् संस्कारजन्यत्वस्य सत्त्वात् । प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम् ॥

पदकृत्यम्

बुद्धिलक्षणमाह—सर्वेति । सर्वे ये व्यवहारा आहारविहारादयस्तेषां हेतुर्बुद्धिरित्यर्थः । दण्डादिवारणाय सर्वव्यवहारेति । कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम् ।

संस्कारेति । संस्कारध्वंसेऽतिव्यातिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति । अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारजन्यमिति । तथापि प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय संस्कारमात्रजन्यत्वं विवक्षणीयम् । क्वचित्तथैव पाठः । न चैवं सत्यसम्भवः, तस्य संस्कारजन्यत्वे सतीन्द्रियार्थसंनिकर्षाजन्यार्थकत्वात् ॥

मेधा

सभी प्रकार के व्यवहार में जो गुण कारण है वह बुद्धि और ज्ञान कहलाता है । बुद्धि दो तरह की है—स्मरण और अनुभव ।

जो ज्ञान संस्कार मात्र से उत्पन्न होता है उसका नाम स्मरण है ।

अनुभवस्य किं लक्षणम्, के च भेदा: ?

**तद्भिन्नं ज्ञानमनुभव:। स द्विविध:—यथार्थोऽयथार्थश्च ॥**

यथार्थानुभवस्य किं लक्षणम् ?

**तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थ:। ( यथा रजते इदं रजतमिति ज्ञानम् ) सैव प्रमेत्युच्यते ॥**

---

न्यायबोधिनी

अनुभवं लक्षयति—तद्भिन्नमिति। तद्भिन्नत्वं नाम स्मृतिभिन्नत्वम्। तथाच स्मृतिभिन्नविशिष्टज्ञानत्वमनुभवस्य लक्षणम्। तत्र विशेषणानुपादाने स्मृतावतिव्याप्ति; विशेष्यानुपादाने घटादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेषण-विशेष्ययोरुभयोपादानम्। अनुभवं विभजते—स द्विविध इति।

यथार्थानुभवं लक्षयति—तद्वतीति। तद्वतीत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम्, तच्छब्देन प्रकारीभूतो धर्मो धर्तव्य:, तथाच तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकानुभवत्वं यथार्थानुभवस्य लक्षणम्। उदाहरणम्-'रजते इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। अत्र रजतत्ववद्विशेष्यकत्वे सति रजतत्वप्रकारकत्वस्य सत्त्वाल्लक्षणसमन्वय:। यथाश्रुते रङ्गरजतयो: 'इमे रजतरङ्गे' इत्याकारकसमूहालम्बनभ्रमेऽतिव्याप्ति:, तत्रापि रजतत्ववद्विशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारत्वकयो रङ्गत्ववद्विशेष्यकत्वरङ्गत्व-प्रकारकत्वयोश्च सत्त्वात्। उक्तनिष्कर्षे तु दर्शितभ्रमे नातिव्याप्ति:, तज्ज्ञानस्य

पदकृत्यम्

तदिति। स्मृतित्वावच्छिन्नमित्यर्थ:। तेन यत्किञ्चित्स्मृतिभिन्नत्वस्य स्मृतौ सत्त्वेऽपि न क्षति:। घटादावतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति। स्मृतिवारणाय तद्भिन्नमिति।

तद्वतीति। तद्वति तत्प्रकारो यस्य स तथेत्यर्थ:। तद्वद्विशेष्यकतत्प्रकारक-

मेधा

उससे भिन्न जो ज्ञान है वह अनुभव है। उसे प्रमा भी कहते हैं। यह अनुभव दो प्रकार का है—यथार्थ (सच्चा) और अयथार्थ (झूठा)। जो पदार्थ वास्तव में जैसा है उसे वैसा ही समझना यथार्थ अनुभव है। जैसे घड़े को घड़ा, सोने को सोना और चाँदी को चाँदी समझना।

अयथार्थानुभवस्य लक्षणं किम् ?

**तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। ( यथा शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानम् ) सैवाप्रमेत्युच्यते ॥**

न्यायबोधिनी

रङ्गांशे रजतत्वावगाहित्वेन रजतांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन च रजतत्वप्रकारतायाः रङ्गत्ववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपितत्वेऽपि रङ्गत्वनिष्ठप्रकारतायाः रजतत्ववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपितत्वेपि रजतत्वनिष्ठप्रकारताया रजतत्ववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्ववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपितत्वाभावाच्च।

अयथार्थानुभवं लक्षयति—तदभाववतीति। अत्रापि पूर्ववत्तदभाववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालिज्ञानत्ववत्त्वं विवक्षणीयम् अन्यथा यथाश्रुते रङ्गरजतयोः 'इमे रङ्गरजते' इत्याकारकसमूहालम्बनप्रमायामतिव्याप्तिः, एतत्समूहालम्बनस्य रङ्गरजतोभयविशेष्यकत्वेन रजतत्वरङ्गत्वोभयप्रकारकत्वेन च रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोश्च सत्त्वात्। उक्तनिकर्षे तु न तत्रातिव्याप्तिः, तादृशप्रमायाः रजतांशे रजतत्वावगाहित्वेन रङ्गांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन च रजतत्वाभाववद्रङ्गनिष्ठविशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, रङ्गत्वप्रकारतायाः

पदकृत्यम्

इति यावत्। स्मृतिवारणायानुभव इति। अयथार्थानुभववारणाय तद्वतीति। निर्विकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्प्रकारक इति।

तदभावेति। तदभाववद्विशेष्यकतत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थानुभव इत्यर्थः। यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। स्मृतिवारणायानुभव इति। यथार्थानुभवेऽतिव्याप्तिनिरासराय तदभाववतीति। निर्विकल्पकवार-

मेधा

जो वस्तु वास्तव में उस प्रकार की न हो, उसे वैसी समझना 'अयथार्थ अनुभव' है। जैसे पीतल को देखकर उसे सोना समझना, शुक्ति (सीप) को चमक के कारण चाँदी समझना, रस्सी को साँप समझना।

यथार्थानुभवभेदाः के ?

**यथार्थानुभवश्चतुर्विधः—प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात् ।**

तत्करणं कतिविधम् ?

**तत्करणमपि चतुर्विधम्—प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ॥**

करणस्य किं लक्षणम् ?

**असाधारणं कारणं करणम् ।**

---

### न्यायबोधिनी

रङ्गत्वाभाववद्रजतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितत्वाभावाच्च । उदाहरणम्—यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ॥

यथार्थानुभवं विभजते—यथार्थानुभव इति ।

तत्करणमिति । फलीभूतप्रत्यक्षादिकरणं चतुर्विधमित्यर्थः । प्रत्यक्षादिचतुर्विधप्रमाणानां प्रमाकरणत्वं सामान्यलक्षणम् । एकैकप्रमाणलक्षणं तु वक्ष्यते—प्रत्यक्षज्ञानेत्यादिना ।

करणलक्षणमाह—असाधारणमिति। व्यापारवदसाधारणं कारणं करणमि-

### पदकृत्यम्

णाय तत्प्रकारक इति ।

यथार्थेति । यथार्थानुभवः प्रत्यक्षमेवेति चार्वाकाः । अनुमितिरपीति काणादबौद्धौ । उपमितिरपीति नैयायिकैकदेशिनः । शाब्दमपीति नैयायिकाः । अर्थापत्तिरपीति प्राभाकराः । आनुपलब्धिकोऽपीति भाट्टवेदान्तिनौ । साम्भविकैतिह्यकावपीति पौराणिकाः । चैष्टिकोऽपीति तान्त्रिकाः । एतेषां मतेऽस्वरसं सम्भाव्य तस्य चातुर्विध्यं दर्शितम् ॥

तदिति । यथार्थानुभवात्मकप्रमायाः करणमित्यर्थः ॥

असाधारणमिति । कालादिवारणायासाधारणमिति । व्यापारेऽतिव्याप्ति-

### मेधा

यह यथार्थ अनुभव (ज्ञान) चार प्रकार का है—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्दबोध । उनके करण (असाधारण कारण) भी चार प्रकार के हैं—प्रत्यक्ष, (इन्द्रियाँ), अनुमान (व्याप्तिज्ञान या लिङ्गपरामर्श), उपमान (सादृश्यज्ञान) और शब्द (वाक्य) ।

कारणस्य किं लक्षणम् ?

**कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् ॥**

---

न्यायबोधिनी

त्यर्थः । असाधारणत्वं च कार्यत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । यथा दण्डादेर्घटादिकं प्रत्यसाधारणकारणत्वम्, कार्यत्वातिरिक्तो घटत्वादिरूपो धर्मः तदवच्छिन्नकार्यता घटे तन्निरूपितकारणता दण्डे, अतो घटं प्रति दण्डोऽसाधारणं कारणम्, भ्रम्यादिरूपव्यापारवत्त्वाच्च करणम् । साधारणकारणत्वं च कार्यत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । यथा ईश्वरादृष्टादेः कार्यत्वावच्छिन्नं प्रत्येव कारणत्वात्साधारणकारणत्वम् ।

कारणं लक्षयति—कार्यनियतेति । कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम् । नियतत्वविशेषणानुपादाने पूर्ववर्तिनो रासभादेरपि घटादिकारणत्वं स्यादतो नियतत्वे सतीति विशेषणम् । नियतपूर्ववर्तिनो दण्डरूपादेरपि घटकारणत्वं स्यादतोऽनन्यथासिद्धपदमपि कारणलक्षणे निवेशनीयम् । एवं च न तत्रातिव्याप्तिः, दण्डरूपादीनामन्यथासिद्धत्वात् ।

पदकृत्यम्

वारणाय व्यापारवदित्यपि देयम् । व्यापारश्च—द्रव्यान्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः । ईश्वरेच्छादिवारणाय तज्जन्यत्वे सतीति । कुलालजन्यत्वे सति कुलालजन्यघटजनकत्वं कुलालपुत्रस्याप्यस्त्यतस्तत्रातिव्याप्तिवारणाय प्रथमं सत्यन्तम् । दण्डरूपादिवारणाय तज्जन्यजनक इति ।

कार्येति । कार्यान्नियताऽवश्यम्भाविनी पूर्ववृत्तिः पूर्वक्षणवृत्तिर्यस्य तत्तथेत्यर्थः । अनियतरासभादिवारणाय नियतेति । कार्यवारणाय पूर्वेति । दण्डत्वादिवारणायानन्यथासिद्धत्वविशेषणस्यावश्यकत्वेन तत एव रासभादिवारणसम्भवे

मेधा

असाधारण कारण को करण कहते है ।

**जो घट आदि कार्यो की उत्पत्ति के पहिले अवश्य रहे वह 'कारण' कहलाता है । जैसे—घट के लिये दण्ड, चक्र, कुम्भकार आदि ।**

कार्यस्य किं लक्षणम् ?

**कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥**

कारणं कतिविधम् ?

**कारणं त्रिविधम्—समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् ॥**

समवायिकारणस्य किं लक्षणम् ?

**यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य ।**

---

न्यायबोधिनी

कार्यं लक्षयति—कार्यमिति । प्रागभावप्रतियोगित्वं कार्यस्य लक्षणम् । कार्योत्पत्तेः पूर्वम् 'इह घटो भविष्यति' इति या प्रतीतिर्जायते तत्प्रतीतिविषयीभूतो योऽभावः स प्रागभावः, तत्प्रतियोगि घटादिरूपं कार्यम् ।

कारणं विभजते—कारणमिति । समवायिकारणमसमवायिकारणं निमित्तकारणं चेति ॥

समवायिकारणं लक्षयति—यत्समवेतमिति । यस्मिन्समवेतं सत्सम-

पदकृत्यम्

नियतपदमनर्थकमेव । एवं चानन्यथासिद्धकार्यपूर्ववृत्ति कारणमिति फलितम् । अनन्यथासिद्धत्वमन्यथासिद्धिशून्यत्वम् । अन्यथासिद्धिश्चावश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिनैव कार्यसम्भवे तत्सहभूतत्वम् । यथाऽवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटरूपकार्यसम्भवे तत्सहभूतत्वं दण्डत्वादौ तदन्यथासिद्धत्वम् ।

प्रागभावेति । कालादिवारणाय प्रागिति । असम्भववारणाय प्रतियोगीति ।

यदिति । यस्मिन्समवायसम्बन्धेन वर्तमानं कार्यमुत्पद्यते तदित्यर्थः ।

मेधा

जो पदार्थ प्रागभाव का प्रतियोगी हो, अर्थात् जो उत्पन्न होने वाला हो, वह 'कार्य' कहलाता है । जैसे घट आदि ।

कारण तीन प्रकार का है—समवायिकारण, असमवायिकारण, और निमित्तकारण ।

जिस द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न हो वह 'समवायिकारण'

**पटश्च स्वगतरूपादेः ॥**

असमवायिकारणस्य किं लक्षणम् ?

**कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् कारणमसमवायि-**

---

न्यायबोधिनी

वायेन सम्बद्धं सत् कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणमित्यर्थः। उदाहरणम्—यथा तन्तव इति। येषु तन्तुषु समवायेन सम्बद्धं सत्पटात्मकं कार्यमुत्पद्यते तत्तन्तवः समवायिकारणमित्यर्थः। सामान्यलक्षणं तु—समवायसम्बन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वमिति। समवायसम्बन्धेन घटाधिकरणे कपालादौ कपालादेस्तादात्म्यसम्बन्धेनैव कारणत्वात्, समवायसम्बन्धावच्छिन्नघटत्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकपालत्वाद्यवच्छिन्नकारणतायाः कपालादौ सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। समवायेन जन्यभावत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन द्रव्यस्यैव कारणत्वाज्जन्यभावेषु द्रव्यगुणकर्मसु त्रिषु द्रव्यमेव समवायिकारणम्, द्रव्ये तु द्रव्यावयवाः समवायिकारणम्, अतो गुणादावपि द्रव्यमेव समवायिकारणमित्याशयेनाह—**पटश्च स्वगतरूपादेरिति**। समवायिकारणमित्यनुषज्यते ॥

असमवायिकारणं लक्षयति—**कार्येणेति**। असमवायिकारणं द्विविधं कार्येण

पदकृत्यम्

चक्रादिवारणाय समवेतमिति।

**कार्येणेति**। कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति यत् कारणं तदसमवायिकारणम्। तन्तुसंयोगादावव्याप्तिवारणाय कार्येणेति। तन्तुरूपादावव्याप्तिवारणाय कारणेति। आत्मविशेषगुणेऽतिव्याप्तिवारणायात्मविशेषगुणभिन्नत्वे सतीति। विशेषवार-

मेधा

है। जैसे घट का समवायिकारण कपाल है। पट (कपड़े) का समवायिकारण तन्तु ( सूत ) है। पट ( वस्त्र ) अपने रूप ( सफेदी आदि ) का समवायिकारण है।

**कार्य या कारण के साथ एक अधिकरण (स्थान) में समवाय सम्बन्ध से**

कारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य, तन्तुरूपं पटरूपस्य ।।

## न्यायबोधिनी

सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तत् इत्येकम्, कारणेन सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तदपरमसमवायिकारणमित्यर्थः । अत्र कारणेनेत्यस्य स्वकार्यसमवायिकारणेनेत्यर्थः । जन्यद्रव्यमात्रेऽवयवसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वात्पटात्मककार्ये तदवयवतन्तुसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वमिति दर्शयन् प्रथममुदाहरति—**यथा तन्तुसंयोगः पटस्येति** । यथा तन्तुसंयोगः पटात्मककार्येण सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवायसम्बन्धेन विद्यमानत्वे सति कारणत्वात्पटात्मककार्यं प्रति तन्तुसंयोगोऽसमवायिकारणमित्यर्थः । द्वितीयमसमवायिकारणं 'कारणेन सह'—इत्यादिना पूर्वोक्तं तदुदाहरति–तन्तुरूपमिति । कारणेन सह पटरूपसमवायिकारणीभूतपटेन सह, एकस्मिन्नर्थे तन्तुरूपे समवेतत्वे सति कारणत्वात् तन्तुरूपं पटगतरूपस्यासमवायिकारणमित्यर्थः । सामान्यलक्षणं तु—समवायसम्बन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता या समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसम्बन्धावच्छिन्ना कारणता तदाश्रयत्वमसमवायिकारणत्वमिति । (द्रव्यासमवायिकारणीभूतावयवसंयोगादौ तु ) समवायसम्बन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता समवायसम्बन्धावच्छिन्ना कपालद्वयसंयोगनिष्ठा कारणता कपालद्वयसंयोगे वर्तते । एवमाद्यपतनक्रियायामाद्यस्यन्दनक्रियायां च गुरुत्वद्रवत्वे असमवायिकारणे भवतः, आद्यपतनक्रियां प्रति आद्यस्यन्दनक्रियां प्रति च समवायसम्बन्धेनैव तयोः कारणत्वात् । अवयविगुणभूतघटपटरूपादौ त्ववयवगुणीभूतकपालतन्तुरूपादेः स्वपदग्राह्यकपालतन्तुरूपादिसमवायिकपाल–तन्त्वादिसमवेतत्वसम्बन्धेनैव कारणत्वात् तत्सम्बन्धावच्छिन्नकारणताश्रयत्वमवयवगुणीभूतकपालरूपतन्तुरूपादौ वर्तते ।

## पदकृत्यम्

णाय कारणमिति ।

## मेधा

वर्त्तमान होकर जो कारण रहे वह 'असमवायिकारण' है। जैसे तन्तुओं का संयोग पट के और तन्तुओं का रूप पट के रूप के प्रति असमवायिकारण हैं।

निमित्तकारणस्य किं लक्षणम् ?

**तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा तुरीवेमादिकं पटस्य ॥**

करणस्य निकृष्टलक्षणं किम् ?

**तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम् ।**

---

न्यायबोधिनी

निमित्तकारणं लक्षयति—तदुभयभिन्नमिति । समवायिकारणभिन्नत्वे सति असमवायिकारणभिन्नत्वे सति कारणत्वं निमित्तकारणस्य लक्षणमित्यर्थः ।

करणलक्षणमुपसंहरति—तदेतदिति । यदसाधारणमिति । व्यापारवत्त्वे सतीत्यपि पूरणीयम्, अन्यथा तन्तुकपालसंयोगयोरतिव्याप्तिः, तन्तुकपालसंयोगयोरपि कार्यत्वातिरिक्तपटत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वादसाधारणत्वमस्त्येवेत्यतस्तत्र करणत्ववारणाय व्यापारवत्त्वे सतीति करणलक्षणे विशेषणं देयम् । व्यापारत्वं च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम् । भवति हि दण्डजन्यत्वे सति दण्डजन्यघटजनकत्वाद् भ्रम्यादेर्दण्डव्यापारत्वम् । एवं कपालसंयोगतन्तुसंयोगादेरपि कपालतन्त्वादिव्यापारत्वं कपालतन्त्वादिजन्यत्वे सति कपालतन्त्वादि-

पदकृत्यम्

तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणमिति । समवाय्यसमवायिकारणवारणाय तदुभयभिन्नमिति । विशेषादावतिव्याप्तिवारणाय कारणमिति ।

तदेतदिति । यस्मात्करणत्वघटकं कारणमुपदर्शितं तस्मादेतत्त्रिविधसाधकमध्ये यत्साधकतमं तदेव करणमिति भावः ॥ इति करणप्रपञ्चः ॥

मेधा

समवायिकारण और असमवायिकारण से भिन्न जो कारण है, वह 'निमित्तकारण' है । जैसे घट के प्रति दण्ड, चक्र आदि । पट के प्रति तुरी, वेमा (जुलाहे के औजार) आदि ।

इन तीनों कारणों में जो असाधारण हो उसे 'करण' कहते हैं ।

प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणं किम् ?

**तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ॥**

प्रत्यक्षप्रमालक्षणं किम्, कतिविधं च तत् ?

**इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । ( ज्ञानाकरणकं ज्ञानं**

न्यायबोधिनी

जन्यघटपटादिजनकत्वात् । करणलक्षणेऽसाधारणत्वविशेषणानुपादाने ईश्वरादृष्टादेरपि व्यापारवत्त्वात्करणत्वं स्यात् । अतस्तत्रातिव्याप्तिवारणायासाधारणेति विशेषणम् ।

षड्विधेन्द्रियभूतप्रत्यक्षप्रमाणस्य लक्षणमाह–तत्रेति । प्रमाभूतप्रत्यक्षादिषु प्रत्यक्षात्मकं यज्ज्ञानं चाक्षुषादिप्रत्यक्षं तत्प्रति व्यापारवदसाधारणकारणमिन्द्रियं भवति; अतः प्रत्यक्षज्ञानकरणत्वं प्रत्यक्षस्य लक्षणम् । आद्यसन्निकर्षातिरिक्तचतुर्विधसन्निकर्षाणां समवायरूपत्वेनेन्द्रियजन्यत्वाभावाद्व्यापारत्वं न सम्भवतीति इन्द्रियमनःसंयोगस्यैव बाह्यप्रत्यक्षे जननीये इन्द्रियव्यापारता बोध्या । मानसप्रत्यक्षे त्वात्ममनःसंयोगस्यैव सा बोध्या ।

प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणमुक्त्वा प्रत्यक्षप्रमालक्षणमाह–इन्द्रियार्थसन्निकर्षेति । जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्ष्यत्वमित्यभिप्रायेणेदं लक्षणम् । ईश्वरप्रत्यक्षसाधारणं तु—ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षमिति । ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सादृश्यज्ञानं

पदकृत्यम्

तत्रेति । प्रमाणचतुष्टयमध्ये । दण्डादिवारणाय ज्ञानेति । अनुमानादिवारणाय प्रत्यक्षेति ।

इन्द्रियार्थेति । इन्द्रियं चक्षुरादिकमर्थो घटादिस्तयोः सन्निकर्षः संयोगादि-

मेधा

प्रत्यक्षज्ञान का असाधारण कारण 'प्रत्यक्षप्रमाण' (चक्षु आदि इन्द्रियाँ) है ।

चक्षु आदि इन्द्रियों के और घट-पट आदि विषयों के सन्निकर्ष ( सम्बन्ध ) से जो ज्ञान हो वह 'प्रत्यक्ष' है । अथवा, जिस ज्ञान का करण कोई दूसरा ज्ञान न हो, वह ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है ।

**प्रत्यक्षम्) तद् द्विविधम्—निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति।**

निर्विकल्पकलक्षणं किम्?

**(तत्र) निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् (यथा किञ्चिदिद-मिति)।**

---

न्यायबोधिनी

पदज्ञानं च, तदेव करणं येषां तानि ज्ञानकरणकानि अनुमित्युपमितिशाब्दानि, तद्भिन्नं प्रत्यक्षमित्यर्थः। प्रत्यक्षे इन्द्रियाणामेव करणत्वं न तु ज्ञानस्य, तथा च ज्ञानाकरणज्ञानत्वस्य प्रत्यक्षसामान्य एव सत्त्वाल्लक्षणसङ्गतिः। प्रत्यक्षं विभजते—निर्विकल्पकमिति।

तल्लक्षयति—निष्प्रकारकमिति। प्रकारताशून्यज्ञानत्वमेव निर्वि कल्पकत्वमित्यर्थः। निर्विकल्पके चतुर्थी विषयता स्वीक्रियते, त्रिविधविषयता-मध्ये एकापि तत्र नास्ति, अतो विशेष्यताशून्यज्ञानत्वं संसर्गताशून्यज्ञानत्व-मित्यपि लक्षणं सम्भवति।

पदकृत्यम्

स्तज्जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षमित्यर्थः। सन्निकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति। अनुमित्या-दिवारणायेन्द्रियार्थसन्निकर्षेति। ननु सोपनेत्रचक्षुषा कथं पदार्थग्रहणम्? चक्षुष उपनेत्रनिरुद्धत्वेन पदार्थेन सह सन्निकर्षाभावात्, कथं वा स्वच्छजाह्नवीसलि-लावृतमत्स्यादेश्चक्षुषा ग्रहणमिति चेन्न। स्वच्छद्रव्यस्य तेजोनिरोधकत्वाभावेन तदन्तश्चक्षुःप्रवेशसम्भवात्। न चेश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति वाच्यम्। अत्र जन्य-प्रत्यक्षस्यैव लक्षितत्वात्।

तत्र निष्प्रकारकमिति। सविकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय निष्प्रकारक-मिति। प्रकारवारणाय ज्ञानमिति।

मेधा

प्रत्यक्ष दो प्रकार का है—निर्विकल्पक और सविकल्पक।

जिस ज्ञान में विशेषण-विशेष्य और उनके सम्बन्ध का ('यह विशेषण है, यह विशेष्य है, यह विशेषण विशेष्य का सम्बन्ध है' ऐसा) ज्ञान न हो वह ज्ञान 'निर्विकल्पक' है।

सविकल्पकलक्षणं किम् ?

**सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम्। यथा डित्थोऽयं ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति ॥**

सन्निकर्षः कतिविधः कश्च सः ?

**प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः—संयोगः, संयुक्त-**

---

न्यायबोधिनी

सविकल्पकं लक्षयति—**सप्रकारकमिति**। विषयताया ज्ञाननिरूपितत्वाज्ज्ञानस्य विषयतानिरूपकत्वेन प्रकारतानिरूपकज्ञानत्वं सविकल्पकस्य लक्षणम्। एवं विशेष्यतानिरूपकज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं सम्भवति। उदाहरणम्—**यथेति**। इदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितडित्थत्वप्रकारताशालिज्ञानम्, इदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितब्राह्मणत्वप्रकारताशालिज्ञानं च सविकल्पकमित्यर्थः।

चाक्षुषादिषड्विधप्रत्यक्षकारणीभूतान् षड्विधसन्निकर्षान्विभजते—**संयोग इत्यादि**। द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसं-

पदकृत्यम्

**सप्रकारकमिति**। घटादिवारणाय ज्ञानमिति। निर्विकल्पकवारणाय सप्रकारकमिति।

**प्रत्यक्षेति**। तच्च प्रत्यक्षं षड्विधम्—घ्राणजरासनचाक्षुषश्रौत्रत्वाचमानसभेदात्। ननु प्रत्यक्षकारणीभूतेन्द्रियनिष्ठप्रत्यक्षसामानाधिकरण्यघटकः सन्निकर्षः

मेधा

जिस ज्ञान में विशेषण-विशेष्य और उनका सम्बन्ध विषय हों, वह ज्ञान 'सविकल्पक' है। जैसे 'यह ( डित्थ काठ का हाथी, या घोड़ा ) है,' यह ब्राह्मण है', 'यह श्याम है'—इत्यादि ज्ञान सविकल्पक हैं।

विषय—घट आदि का और चक्षु आदि इन्द्रियों का सन्निकर्ष (सम्बन्ध) प्रत्यक्षज्ञान का कारण है। यह सन्निकर्ष छह (६) प्रकार का है—१. संयोग २. संयुक्तसमवाय ३. संयुक्तसमवेतसमवाय ४. समवाय ५. समवेत-

**समवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायो विशेषणविशेष्यभावश्चेति ।**

घट (द्रव्य) प्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः ?

**चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः ।**

---

न्यायबोधिनी

योगस्य कारणत्वम् । द्रव्यसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यसमवेतसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुत्वत्वम् । द्रव्यग्राहकाणीन्द्रियाणि चक्षुस्त्वङ् मनांसि त्रीण्येव, अन्यानि घ्राणरसनश्रवणानि गुणग्राहकाणि । अतस्त्वगिन्द्रियस्थले द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासम्बन्धेन त्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिनं प्रति त्वक्संयोगस्य हेतुता । द्रव्यसमवेतत्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तसमवायस्य हेतुता । द्रव्यसमवेतसमवेतोष्णत्वशीतत्वादिजातिस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । एवमात्ममानसप्रत्यक्षे मनःसंयोगस्य हेतुता । आत्मसमवेतसुखादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवायस्य हेतुता । आत्मसमवेतसमवेतसुखत्वादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । रसनघ्राणयोस्तु रसगन्धतद्गतजातिग्राहकत्वेन द्वितीयतृतीययोः सन्निकर्षयोरेव तत्र हेतुता वाच्या । श्रवणेन्द्रियस्याकाशरूपत्वेन शब्दस्याकाशगुणत्वेन श्रवणेन्द्रियेण समं समवायः सन्निकर्षः । शब्दवृत्तिशब्दत्वकत्वखत्वादिजातिविषयकश्रावणप्रत्यक्षे समवेतसमवायस्य हेतुता च बोध्या ।

पदकृत्यम्

क इत्यपेक्षायां तं विभज्य दर्शयति—प्रत्यक्षेति । लौकिकप्रत्यक्षेत्यर्थः ।

संयोगमुदाहरति—चक्षुषेति । तथा च द्रव्यचाक्षुषत्वाचमानसेषु संयोग एव सन्निकर्ष इति भावः ।

मेधा

समवाय ६. विशेषणविशेष्यभाव ।

(१) आँख से होने वाले घट आदि के प्रत्यक्षज्ञान में 'संयोग' सन्निकर्ष होता ।

घट (द्रव्य) रूप (गुण) प्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः ?

**घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् ।**

रूपत्वादि (गुणगतजाति) प्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः ?

**रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात् ।**

शब्दप्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः ?

**श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः, कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद् गुणगुणिनोश्च**

---

पदकृत्यम्

**घटरूपेति** । चक्षुषा इत्यनुषज्यते । तथा च द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वाचमानसरासनघ्राणजेषु संयुक्तसमवाय एव सन्निकर्ष इत्यर्थः ।

**रूपत्वेति** । रूपत्वात्मकं यत्सामान्यं तत्प्रत्यक्ष इत्यर्थः । अत्रापि चक्षुषा इत्यनुषज्यते । तथा च द्रव्यसमवेतसमवेतचाक्षुषरासनघ्राणजस्पार्शनमानसेषु संयुक्तसमवेतसमवाय एव सन्निकर्ष इति भावः । अथ द्रव्यतत्समवेतप्रत्यक्षेऽपि संयुक्तसमवेतसमवाय एव सन्निकर्षोऽस्त्विति चेत्, नैतत्—आत्मनोऽप्यनध्यक्षत्वप्रसङ्गात् ।

समवायसन्निकर्षमुदाहरति—**श्रोत्रेणेति** । जननीय इति शेषः । ननु

मेधा

(२) घट, पट आदि के लाल, काले, पीले आदि रंगों का चक्षु से प्रत्यक्ष ज्ञान करने में 'संयुक्तसमवाय' संन्निकर्ष है, क्योंकि चक्षु से संयुक्त हुआ घट उसमें लाल, पीला आदि रंग समवाय सम्बन्ध से रहता है ।

(६) घटपटादिगत रूप में रहने वाली रूपत्व जाति का चक्षु से जो प्रत्यक्ष होता है, उसमें 'संयुक्तसमवेतसमवाय' संन्निकर्ष है, क्योंकि चक्षु से संयुक्त हुआ घट, उसमें समवेत हुआ-रूप, उसमें समवेत है रूपत्व ।

(४) कान से शब्द के प्रत्यक्ष में 'समवाय' संन्निकर्ष है, क्योंकि कान के छिद्र में जो आकाश ( अवकाश ) है, वही श्रोत्रेन्द्रिय है, और शब्द

**समवायात् ।**

शब्दत्वसाक्षात्कारे कः सन्निकर्षः ?

**शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः, श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् ।**

अभावप्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः ?

**अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः, घटाभाववद्**

---

न्यायबोधिनी

**अभावप्रत्यक्ष इति ।** अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावो नाम विशेषणतासन्निकर्षः । पञ्चविधसन्निकर्षेषु मध्ये संयोगस्थाने संयुक्तपदं समवायस्थाने समवेतपदं च घटयित्वा अभावस्थले निर्वाह्यम् । तथाहि—द्रव्याधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तविशेषणता । द्रव्यसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतविशेषणता । द्रव्यसमवेतसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणता च सन्निकर्षः । तत्र घटे

पदकृत्यम्

श्रोत्रशब्दयोः कथं समवाय इत्यपेक्षमाणं प्रति तमुपपाद्य दर्शयति—**कर्णेति** । अथ समवायस्य नित्यत्वेन शब्दप्रत्यक्षे को व्यापार इति चेत् ? शब्दः श्रोत्रमनःसंयोगो वेति गृहाण ।

**शब्दत्वेति ।** श्रोत्रेण जननोये इत्यनुकर्षशेषः ।

**विशेषणेति ।** विशेषणभावो विशेष्यभावश्चेति बोध्यम् । इन्द्रिय-

मेधा

आकाश का गुण है । गुण और गुणी का समवाय सम्बन्ध होता है । अतः श्रोत्र का शब्द से समवाय सम्बन्ध है ।

(५) श्रोत्र इन्द्रिय से शब्दगत शब्दत्व-जाति का प्रत्यक्ष ज्ञान करने में 'समवेतसमवाय' संन्निकर्ष है, क्योंकि श्रोत्र में समवेत (समवाय सम्बन्ध से रहने वाला) शब्द है, उसमें शब्दत्व जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है ।

(६) घटाभाव, पटाभाव आदि अभावों का चक्षु आदि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष

**भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात् ।**

प्रत्यक्षप्रमाणस्य निकृष्टं लक्षणं किम् ?

**एवं सन्निकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तत्करणमिन्द्रियम्, तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम् ॥**

इति प्रत्यक्षखण्डम् ॥

———०———

न्यायबोधिनी

पटत्वाभावः संयुक्तविशेषणतया गृह्यते । घटसमवेतघटत्वादौ पृथिवीत्वाभावः संयुक्तसमवेतविशेषणतया गृह्यते । घटसमवेतरूपत्वादौ नीलत्वाभावश्च संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणया गृह्यत इति सङ्क्षेपः ।

इति न्यायबोधिन्यां प्रत्यक्षखण्डम् ॥

पदकृत्यम्

सम्बद्धविशेषणत्वमिन्द्रियसम्बद्धविशेष्यत्वमिति यावत् । विशेषणभावसन्निकर्षमुपपाद्य दर्शयति—**घटाभाववदिति** । 'इह भूतले घटो नास्ति' इत्यादौ विशेष्यतासन्निकर्षोऽवसेयः, सप्तम्यन्तस्य विशेषणत्वात् ।

प्रत्यक्षप्रमाणमुपसंहरति—**एवमिति** । उपदर्शितक्रमेणेत्यर्थः । ननु सिद्धान्ते प्रत्यक्षज्ञानकरणमिन्द्रियार्थसन्निकर्षः किं न स्यादिति चेन्नेत्याह—**तत्करणमिति** । प्रत्यक्षप्रमाणं निगमयति—**तस्मादिति** । प्रत्यक्षप्रमाकरणत्वादित्यर्थः । **सिद्धमिति** । न्यायसिद्धान्ते सिद्धमित्यर्थः ॥

इति पदकृत्ये प्रत्यक्षखण्डम् ॥

मेधा

करने में विशेष्यविशेषणभाव संन्निकर्ष है । क्योंकि 'घटाभाववद् भूतलम्' इस जगह में चक्षु से संयुक्त हुआ भूतल, वह विशेष्य है, उसमें घटाभाव विशेषण है । 'भूतले घटाभावः' यहाँ पर चक्षुः संयुक्त भूतल है, वह विशेषण है, और घटाभाव विशेष्य है ।

इस प्रकार पूर्वोक्त छह (६) संन्निकर्षों से जो ( इन्द्रियों से ) ज्ञान होता है, वह 'प्रत्यक्ष' कहा जाता है । इस ज्ञान के करण चक्षु आदि इन्द्रियाँ हैं, अतः इन्द्रियाँ हीं प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाती हैं ।

## अथ अनुमानखण्डम्

अनुमानस्य किं लक्षणम् ?

**अनुमितिकरणमनुमानम् ।**

अनुमितिः का ?

**परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः ।**

---

न्यायबोधिनी

अनुमानं लक्षयति—**अनुमितीति** । अनुमितौ व्याप्तिज्ञानं करणं परामर्शो व्यापारः, अनुमितिः फलं कार्यमित्यर्थः । परामर्शस्य व्याप्तिज्ञानजन्यत्वे सति व्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिजनकत्वात्तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपव्यापारत्वमुपपन्नम् । अनुमितिकरणत्वमनुमानस्य लक्षणम् । अनुमानं व्याप्तिज्ञानम् । एतस्यपरामर्शरूपव्यापारद्वारा अनुमितिं प्रत्यसाधारणकारणतयाऽनुमितिकरणत्वमुपपन्नम् ।

**परामर्शजन्यमिति** । परामर्शजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुमितेर्लक्षणम् । अत्र ज्ञानत्वमात्रोपादाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, अतस्तद्वारणाय परामर्शजन्यत्वे सतीति विशेषणोपादानम् । परामर्शजन्यत्वमात्रोक्तौ परामर्शध्वंसेऽतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय ज्ञानत्वोपादानम् ।

पदकृत्यम्

प्रत्यक्षानुमानयोः कार्यकारणभावसङ्गतिमभिप्रेत्य प्रत्यक्षानन्तरमनुमानं निरूपयति—**अनुमितीति** । अनुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः । तच्च लिङ्गपरामर्श एवेति निवेदयिष्यते । कुठारादावतिव्याप्तिवारणाय अनुमितीति । प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय—**अन्विति** ।

नन्वनुमितेरेव दुर्निरूपत्वात्तद्घटितानुमानमपि दुर्निरूपमित्यत आह—**परामर्शेति** । प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय परामर्शजन्यमिति । परामर्शध्वंस-

मेधा

**अनुमिति का करण अनुमान कहलाता है ।**

**परामर्श ज्ञान से उत्पन्न जो ज्ञान वह अनुमिति कहलाता है ।**

परामर्शस्य किं स्वरूपम् ?

**व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः। यथा वह्निव्याप्य-धूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः। तज्जन्यं पर्वतो वह्नि-मानिति ज्ञानमनुमितिः।**

---

न्यायबोधिनी

अनुमितिलक्षणघटकीभूतपरामर्शलक्षणमाचष्टे — **व्याप्तिविशिष्टेति।** व्याप्तिविशिष्टं च तत्पक्षधर्मताज्ञानमिति कर्मधारयः। अत्र विशिष्टपदस्य प्रकारतानिरूपकपरत्वात्पक्षधर्मताया ज्ञानमित्यत्र षष्ठ्या विषयत्वबोधनात् धर्मतापदस्य सम्बन्धार्थकत्वात् कर्मधारयसमासेन समस्यमानपदार्थयोरभेद-संसर्गलाभाच्च व्याप्तिप्रकारकाभिन्नं यत्पक्षसम्बन्धविषयकं ज्ञानं तत्परामर्श इति लभ्यते। एवं सति 'धूमो वह्निव्याप्यः, आलोकवान्पर्वतः' इत्याकारक-समूहालम्बनेऽप्युक्तपरामर्शलक्षणमस्तीत्यतिव्याप्तिस्तद्वारणाय पक्षनिष्ठविशेष्यता-निरूपिता या हेतुनिष्ठा प्रकारता तन्निरूपिता या व्याप्तिनिष्ठा प्रकारता तच्छालिज्ञानं परामर्श इति निष्कर्षः। एतादृशपरामर्शजन्यत्वे सति ज्ञानत्व-मनुमितेर्लक्षणम्। अनुमितिपरामर्शयोर्विशिष्य कार्यकारणभावश्चेत्थम्—पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्न –

पदकृत्यम्

वारणाय ज्ञानमिति। परामर्शप्रत्यक्षवारणाय हेत्वविषयकमित्यपि बोध्यम्।

**व्याप्तिविशेष्टेति।** विषयितासम्बन्धेन व्याप्तिविशिष्टं पक्षधर्मताज्ञानं परामर्श इत्यर्थः। घटादिज्ञानवारणाय पक्षधर्मतेति। धूमवान्पर्वत इत्यादि-ज्ञानवारणाय व्याप्तिविशेष्टेति। **तदिति।** परामर्शजन्यमित्यर्थः।

मेधा

'व्याप्तिविशिष्ट हेतु (धूम आदि) पक्ष (पर्वत आदि) में है' इस ज्ञान को 'परामर्श' कहते हैं। जैसे 'यह पर्वत अग्निवाप्य (अग्निव्याप्ति-विशिष्ट) धूम वाला है'—यह ज्ञान परामर्श है। इससे उत्पन्न 'पर्वत में वह्नि है'—यह ज्ञान हीं अनुमिति है।

व्याप्तिः का ?

**यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः ।**

न्यायबोधिनी

विधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिता या धूमत्वावच्छिन्नप्रकारता तन्निरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यता तच्छालिनिर्णयः कारणम् । वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नविशेष्यतायाः धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नप्रकारतायाश्चाभेदानङ्गीकर्तृमते वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वावच्छिन्नव्याप्तित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वावच्छिन्नधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयः कारणमति वाच्यम्, स च निर्णयः वह्निव्याप्याधूमवान्पर्वत इत्याकारको बोध्यः ॥

**यत्र यत्रेति** । यत्रपदवीप्सा धूमाधिकरणे यावति वह्निमत्त्वलाभाय । यावत्पदमहिम्ना वह्नेर्धूमव्यापकत्वं लब्धम् । तदेव स्पष्टयति—**साहचर्यनियम इति** । एतदर्थस्तु नियतसाहचर्यं व्याप्तिरिति । नियतत्वं व्यापकत्वम् । साहचर्यं सामानाधिकरण्यम्, तथा च धूमनियतवह्निसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरित्यर्थः । अत्र वह्नेर्धूमव्यापकत्वं नाम धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वम् । तथाहि—धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरमहानसादौ वर्तमानो योऽभावः, घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकः न तु वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः, कुतः पर्वतादौ वह्नेः सत्त्वात्, एवं सति

पदकृत्यम्

**यत्र यत्रेति** । यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति व्याप्तेरभिनयः । तत्र साहचर्यनियम इति लक्षणम् । सह चरतीति सहचरस्तस्य भावः साहचर्यं सामानाधिकरण्यमिति यावत् । तस्य नियमो व्याप्तिरित्यर्थः । स चाव्यभि-

मेधा

'जहाँ-जहाँ धूम रहता वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य रहता है' इस साहचर्यनियम को व्याप्ति कहते हैं ।

पक्षधर्मतायाः किं लक्षणम् ?

**व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ।**

अनुमानं कतिविधम् ?

**अनुमानं द्विविधम्—स्वार्थं परार्थं च ।**

---

न्यायबोधिनी

धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरादौ वर्तमानस्य घटाद्यभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकं घटत्वादिकमनवच्छेदकं वह्नित्वं तद्वत्त्वं वह्नौ वर्ततेऽतो धूमव्यापकत्वं वह्नौ वर्तते, तथा च धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति फलितमिति । इयमन्वयव्याप्तिः सिद्धान्तानुसारेण । पूर्वपक्षव्याप्तिस्तु साध्याभाववदवृत्तित्वम् । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवैयधिकरण्यावच्छिन्नाभाववन्निरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिरित्यर्थः । तच्च केवलान्वयिन्यव्याप्तमिति सिद्धान्तानुसरणम् ।

पदकृत्यम्

चरितत्वम् । तच्च व्यभिचाराभावः । व्यभिचारश्च साध्याभाववद्वृत्त्विम् । तथा च साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिरिति पर्यवसन्नम् । महानसं वह्निमत् धूमादित्यादौ साध्यो वह्निस्तदभाववान् जलह्रदादिस्तदवृत्तित्वं नौकादाववृत्तित्वं प्रकृते हेतुभूते धूमे इति कृत्वा लक्षणसमन्वयः । धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यो धूमस्तदभाववदयोगोलकं तद्वृत्तित्वमेव वह्न्यादाविति नातिव्याप्तिः ।

ननु ज्ञातेयं व्याप्तिः, पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र का नाम पक्षधर्मता ? इत्यपेक्षमाणं प्रति तत्स्वरूपं निरूपयति—व्याप्यस्येति । व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः, स च धूमादिरेव, तस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मतेत्यर्थः ।

मेधा

व्याप्तिविशिष्ट धूम आदि का पर्वत आदि पक्ष में रहना पक्षधर्मता कहलाता है । यह अनुमान ( अनुमिति का करण ) दो प्रकार का है—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान ।

किं नाम स्वार्थानुमानम् ?

**स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः। तथाहि—स्वयमेव भूयो दर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति—'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निः' इति। तदनन्तरं वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते, अयमेव**

---

न्यायबोधिनी

अनुमानं विभजते—**स्वार्थमिति**। स्वार्थानुमानं नाम न्यायाप्रयोज्यानुमानम्। न्यायप्रयोज्यानुमानं परार्थानुमानम्। न्यायत्वं च प्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चकसमुदायत्वम्। अवयवत्वं च प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम्।

पदकृत्यम्

अथ कथमनुमानमनुमितिकरणं कथं वा तस्मादनुमितेर्जनिरिति जिज्ञासमानं प्रति लाघवादनुमानविभागमुखेनैव बुबोधयिषुरनुमानं विभजते—**अनुमानमिति**। द्वैविध्यं दर्शयति–**स्वार्थं परार्थं चेति**। स्वस्यार्थः प्रयोजनं यस्मात् तत् स्वार्थमिति समासः। स्वप्रयोजनं च स्वस्यानुमेयप्रतिपत्तिः। एवं परार्थमित्यस्यापि।

**अयमिति**। व्याप्तिबलेन लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम्, तच्च धूमादि,

मेधा

स्वयं अपने अनुमान कर्ता को जिस हेतु से अनुमिति हो, उसे स्वार्थानुमान कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति महानस ( रसोईघर ) आदि में धूम और वह्नि के साहचर्य ( एक साथ रहने ) को वारम्वार देखकर—'जहाँ धूआँ रहता है, वहाँ अग्नि अवश्य रहता हैं' इस प्रकार व्याप्ति का निश्चय करके, पर्वत के पास जाकर-'इसमें अग्नि है या नहीं!' इस प्रकार संदेह करता है। पश्चात् उस पर्वत में धूम को देखकर वही व्यक्ति 'जहाँ धूम रहता है, वहाँ अग्नि भी अवश्य रहता है' इस व्याप्ति का स्मरण करता है। तब उसे 'वह्निव्याप्यधूमवाला यह पर्वत है—'यह ज्ञान ( लिङ्गपरामर्श ) उत्पन्न होता है। इस ज्ञान से उस व्यक्ति को 'पर्वत में अग्नि

**लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात् पर्वतो वह्निमानितिज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते । तदेतत्स्वार्थानुमानम् ।**

परार्थानुमानस्य किं स्वरूपम् ?

**यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम् । यथा पर्वतो वह्निमान्, धूमवत्त्वात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान्, यथा महानसम्, तथा चायम्, तस्मात्तथेति । अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रति-**

---

पदकृत्यम्

तस्य परामर्शो ज्ञानविशेष इत्यर्थः । **तस्मादिति** । लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः । स्वार्थानुमानमुपसंहरति—**तदेतदिति** । यस्मादिदं स्वप्रतिपत्तिहेतुस्तस्मादेतत्स्वार्थानुमानमित्यर्थः ।

क्रमप्राप्तं परार्थानुमानमाह—**यत्त्विति** । यत्पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानमिति सम्बन्धः । **पञ्चावयवेति** । अथावयवत्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वम्, प्रतिज्ञादिषु तदसम्भवात्कथमेतेऽवयवाः स्युरिति चेत् ? अनुमानवाक्यैकदेशत्वात्तु अवयवा इत्युपचर्यन्त इति गृहाण । नन्वेमपि पञ्चावयववाक्यस्यानुमानत्वमेव न विचारसहं तस्य लिङ्गपरामर्शत्वाभावादिति चेत् ? मैवम्, लिंगपरामर्शप्रयोजकलिंगप्रतिपादकत्वेनानुमानमित्युपचारमात्रत्वात् । तदुदाहरति—**यथेति** । **तथा चायमिति** । अयं च पर्वतः

मेघा

है' 'यह ज्ञान उत्पन्न होता है । यही स्वार्थानुमिति कहलाती है । इस ज्ञान का हेतु जो—'वह्निव्याप्य धूमवाला यह पर्वत है' यह लिङ्गपरामर्श हैं, वही 'स्वार्थानुमान' है, क्योंकि जिस ज्ञान से द्रष्टा को स्वयं अनुमिति हो वही स्वार्थानुमान होता है ।

और स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरे पुरुष को समझाने के लिए जो पञ्चावयव वाक्य (—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इत्यादि वाक्य) का प्रयोग किया जाये वह 'परार्थानुमान' है । 'जैसे पर्वत में वह्नि है,' जहाँ जहाँ धूम दीख पड़ता है, वहाँ वहाँ अग्नि अवश्य रहता है, जैसे रसोईघर में' 'और इस पहाड़ में भी धूम दीख पड़ता है', 'अतः इसमें भी अग्नि अवश्य है ।'

पद्यते ।

पञ्चावयवाः के ?

**प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः। पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा। धूमवत्त्वादिति हेतुः। यो यो धूमवान् स स वह्निमानित्युदाहरणम्। तथा चायमित्युपनयः। तस्मात्तथेति निगमनम्।**

---

पदकृत्यम्

तथा—वह्निव्याप्यधूमवानित्यर्थः। तस्मात्तथेति। वह्निव्याप्यधूमवत्त्वाद्वह्निमानित्यर्थः। अनेनेति। अनेन पञ्चावयववाक्येनेत्यर्थः।

ननु पञ्चावयववाक्यमित्यत्र के ते पञ्चावयवा अतस्तान्दर्शयति—प्रतिज्ञेति। प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वमवयवत्वम्। साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनं प्रतिज्ञा। पञ्चम्यन्तं तृतीयान्तं वा लिङ्गवचनं हेतुः। व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्तवचनमुदाहरणम्। उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकवचनमुपनयः। पक्षे साध्यस्याबाधितत्वप्रतिपादकवचनं निगमनम्। इदमेव लक्षणं हृदि निधाय प्रतिज्ञादीन्विशिष्य दर्शयति—पर्वतो वह्निमानित्यादिना।

मेधा

इस प्रकार बताए हुए लिङ्ग (धूम) से सुननेवाले मध्यस्थ को भी 'पर्वत में अग्नि है'—यह अनुमिति हो जाती है।

प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन, निगमन ये पाँच अवयव कहलाते हैं।

'पर्वतो वह्निमान्' ( पहाड़ पर अग्नि है )—यह प्रतिज्ञा है। 'धूमात्' ( क्योंकि यहाँ धूम है ) यह हेतु है, 'यो यो धूमवान् स स वह्निमान्, यथा महानसम्' ( जहाँ जहाँ धूम होता है, वहाँ वहाँ अग्नि भी रहता है, जैसे रसोई घर में' ) यह उदाहरण है। 'तथा चायम्' (यह पहाड़ भी वह्निव्याप्य धूमवाला है )—यह उपनय है। 'तस्मात् तथा' ( इसलिये यह पर्वत भी वह्निवाला है )—यह निगमन है।

स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योः किं करणम् ?

**स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम्। तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्।**

लिङ्गं कतिविधं किञ्चान्वयव्यतिरेकिलक्षणम् ?

**लिङ्गं त्रिविधम्—अन्वयव्यतिरेकि, केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि चेति। अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि। यथा**

---

न्यायबोधिनी

**अन्वयेनेति**। व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिमानित्यर्थः। **व्यतिरेकेणेति**। व्यतिरेको नामाभावः। तथा च साध्याभावहेत्वभावयोर्व्याप्तिर्व्यति-

पदकृत्यम्

**लिङ्गेति**। ज्ञायमानं लिङ्गमनुमितिकरणमिति वृद्धोक्तं न युक्तम्, इयं यज्ञशाला वह्निमती अतीतधूमादित्यादौ लिङ्गाभावेऽप्यनुमितिदर्शनादित्यभिप्रायवांल्लिङ्गपरामर्श एव करणमित्याचष्टे—**लिङ्गपरामर्श एवेति**। अनुमानमुपसंहरति—**तस्मादिति**। अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः। अयमेव तृतीयज्ञानमित्युच्यते। तथाहि—महानसादौ धूमाग्न्योर्व्याप्तौ गृह्यमाणायां यद्धूमज्ञानं तदादिमम्। पक्षे यद्धूमज्ञानं तद्द्वितीयम्। अत्रैव वह्निव्याप्यत्वेन यद्धूमज्ञानं तत्तृतीयम्। इदमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते। **अनुमानमिति**। व्यापारवत्कारणं करणमिति मते व्याप्तिज्ञानमेवानुमानं लिङ्गपरामर्शो व्यापार इत्यवसेयम्।

मेधा

स्वार्थानुमिति और परार्थानुमिति इन दोनों का करण (असाधारण कारण) लिङ्गपरामर्श है। अनुमिति का करण ही अनुमान होता है, अतः 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः' यह लिङ्गपरामर्श ही अनुमान प्रमाण कहलाता है।

लिङ्ग (हेतु) तीन प्रकार का है—अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी और केवलव्यतिरेकी।

जिस हेतु की अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति ये दोनों हों, वह

**वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानसमित्यन्वय-व्याप्तिः । यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा ह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः ।**

केवलान्वयिनः किं लक्षणम् ?

**अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेय-**

न्यायबोधिनी

रेकव्याप्तिः । इयं च व्याप्तिः 'यत्र यत्र वह्न्यभावस्तत्र तत्र धूमाभावः' इति । यत्रपदवीप्सया वह्न्यभाववति यावति धूमाभावग्रहणे यावत्पदस्य व्यापक-त्वपरतया धूमाभावे वह्न्यभावव्यापकत्वं लभ्यते । वह्न्यभावे धूमाभाव-व्याप्यत्वं च लभ्यते । एवं च वह्न्यभावनिष्ठव्याप्तेः स्वाश्रयीभूतवह्न्य-भावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वसम्बन्धेन धूमनिष्ठतया व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वेन धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिमत्त्वेन चान्वयव्यतिरेकित्वेन गीयते । व्यतिरेकपरामर्शस्तु वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिधूमवान् पर्वत इत्याकारः ।

केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । व्यतिरेकव्याप्तिशून्यत्वे सति

पदकृत्यम्

अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणमाह–अन्वयेनेति । तृतीयायाः प्रयोज्यत्वमर्थः । साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः । तदभावयोः साहचर्यं व्यतिरेकः । तथा चान्वयप्रयोज्यव्याप्तिमद्व्यतिरेकप्रयोज्यव्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः । केवल-व्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेनेति । केवलान्वयिनि व्यभिचारवाणाय व्यतिरेकेणेति । तथा चान्वयव्याप्तिरुपदर्शितैव । व्यतिरेकव्याप्तिश्च

मेधा

'अन्वयव्यतिरेकी' हेतु है । जैसे—वह्नि की अनुमिति में धूम हेतु । इसकी 'जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ अग्नि है, जैसे महानस में' यह अन्वयव्याप्ति भी है और 'जहाँ वह्नि नहीं है, वहाँ धूम नहीं है, जैसे तालाब में' यह व्यतिरेक-व्याप्ति भी है ।

जिस हेतु की केवल अन्वयव्याप्ति हो वह केवलान्वयी है । जैसे—'घटो-

**त्वात्पटवत्। अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति, सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च।**

---

न्यायबोधिनी

अन्वयव्याप्तिमत्त्वं केवलान्वयित्वम्। अथवा केवलान्वयिसाध्यकत्वं तत्। एतच्च लक्षणं हेतोर्व्यतिरेकित्वेऽपि सङ्गच्छते, साध्यस्य केवलान्वयित्वादेव व्यतिरेकव्याप्तेरभावात् 'अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि' इति मूलकारोक्तं लक्षणमुपपन्नम्। अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं केवलान्वयित्वम्। न चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वमाकाशाभावे संयोगाभावे चाव्याप्तमिति वाच्यम्। स्वविरोधिवृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यैव तदर्थत्वात्। एकजातीयसम्बन्धेन सर्वत्र विद्यमानत्वं केवलान्वयित्वमिति नव्याः।

पदकृत्यम्

साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः। तदुक्तम्—

व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृगिष्यते।
तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतः प्रतीयते॥
अन्वये साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापकमिष्यते।
साध्याभावोऽन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनात्ययः॥ इति॥

केवलान्वयिनो लक्षणमाह—**अन्वयेनेति**। अन्वयेनैव व्याप्तिर्यस्मिन् स तथा। प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिं निराकरोति—**अत्रेति**। अभिधेयत्वसाध्यकानुमान इत्यर्थः। ननु कुतस्तन्निषेधोऽतस्तत्र हेतुमाह—**सर्वस्येति**। पदार्थमात्रस्येत्यर्थः। तथाच सकलपदाभिधेयत्वस्येश्वरप्रमाविषयत्वस्य चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वेन तदभावाप्रसिद्ध्या तद्घटितव्यतिरेकव्याप्तिर्न सम्भवत्येवेति भावः।

मेधा

**ऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत्' इस स्थल में है। यहाँ प्रमेयत्व हेतु केवलान्वयी है, क्योंकि यह सभी पदार्थों में है और इसका अभाव कहीं नहीं है।**

केवलव्यतिरेकिणः किं लक्षणम् ?

**व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि। यथा पृथिवीतरेभ्यो-भिद्यते गन्धवत्वात्, यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत्, यथा**

---

न्यायबोधिनी

केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति। निश्चितान्वयव्याप्ति-शून्यत्वे सति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वं केवलव्यतिरेकित्वम्। यथा पृथिवीति। अत्र पृथिवीत्वावच्छिन्नः पक्षः, पृथिवीतरजलाद्यष्टभेदः साध्यम्, गन्धवत्त्वं हेतुः। अत्र यद्गन्धवत्तदितरभेदवदित्यन्वयदृष्टान्ताभावाद्गन्धव्यापकेतरभेद-सामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिग्रहासम्भवः, किन्तु यत्र यत्र पृथिवीतरभेदा-भावस्तत्र तत्र गन्धाभावो यथा जलादिकमिति व्यतिरेकदृष्टान्ते जलादावितर-भेदाभावरूपसाध्याभावव्यापकता गन्धाभावे गृह्यते, इममेवार्थं मनसि निधाय 'यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत्, यथा जलम्' इति ग्रन्थेन मूलकारो व्यतिरेकव्याप्तिमेव प्रदर्शितवान्। एवं प्रकारेण व्यतिरेकव्याप्तिग्रहानन्तर-मितरभेदाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिगन्धवती पृथिवीत्याकारकव्यतिरेक-परामर्शात्पृथिवीत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितेतरभेदत्वावच्छिन्नविधेयताका पृथिवी इतरभेदवतीत्याकारकानुमितिर्जायते इति तत्त्वम्। यथाश्रुत-मूलार्थस्तु—यथा जलमिति यत्—जलम्, इतरेभ्यो न भिद्यते—इतरभेदाभाव-वत्, न तद्गन्धवत्—जलमितरभेदाभावव्यापकगन्धवत्। (इत्येवं प्रकारेण-

पदकृत्यम्

केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति। व्यतिरेकेणैव व्याप्तिर्य-स्मिंस्तत्तथा! अन्वयव्याप्तिवारणाय मात्रेति। न चेयं तथेति। इयं

मेधा

जिसमें केवल व्यतिरेक व्याप्ति हो, वह हेतु केवल व्यतिरेकी है। जैसे-पृथ्वी इतर पदार्थों से ( जलादि से ) भिन्न है, क्योंकि उस ( पृथ्वी ) में गन्ध रहती है। और जो पदार्थ जलादि इतर पदार्थों से अलग नहीं हैं, उसमें गन्ध नहीं होता, जैसे जल में। और पृथिवी तो गन्धशून्य है नहीं

**जलम्, न चेयं तथा, तस्मान्न तथेति तद् यद् गन्धवत्तदितरभिन्न-मित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति, पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ।**

---

## न्यायबोधिनी

गन्धाभावनिरूपिता व्याप्यता इतरभेदाभावे गृह्यते ) **न चेयं तथेति ।** इयं पृथिवी, न तथा इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववती न, किन्तु तदभावात्मकगन्धवती । **तस्मान्न तथेति ।** तस्मात्—गन्धाभावाभाववत्त्वात् । (तच्छब्देन गन्धाभावाभावरूपस्य गन्धस्य परामर्शेन तस्मादिति पञ्चम्यन्तात् गन्धाभावाभाववत्त्वादित्यर्थोपलब्धिः ) न तथा–इतरभेदाभाववती न, किन्तु इतरभेदाभावाभाववती इतरभेदवतीत्यर्थः ।

## पदकृत्यम्

पृथिवी, न तथा–न गन्धाभाववतीत्यर्थः । **तस्मान्न तथेति ।** गन्धाभाववत्त्वा-भावादितरभेदाभाववती नेत्यर्थः । नन्वत्र किमिति नान्वयव्याप्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—**अत्रेति** । इतरभेदसाधकानुमान इत्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात्, यन्नैवम् तन्नैवम्, यथा घटः । प्रत्यक्षा-दिकं प्रमाणमिति व्यवहर्तव्यं प्रमाकरणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा प्रत्यक्षा-भासः । विवादास्पदम् आकाशमिति व्यवहर्तव्यं शब्दवत्त्वादित्यादिकमपि केवलव्यतिरेकि द्रष्टव्यम् ।

अत्रेदं बोध्यम्—अन्वयव्यतिरेकि तु पञ्चरूपोपपन्नं स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते, तानि कानि ? इति चेच्छ्रूयताम्—पक्षधर्मत्वं सपक्षसत्त्वं विपक्षाद्व्या-वृत्तिरबाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं चेति । अबाधितः साध्यरूपो विषयो यस्य तत्तथोक्तम्, तस्य भावस्तत्त्वम् । एवं साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्ष इत्युच्यते, स नास्ति यस्य सोऽसत्प्रतिपक्षः, तस्य भावस्तत्त्व-मिति बोध्यम् । केवलान्वयि तु चतूरूपोपपन्नमेव स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते,

## मेधा

अतः जलादि इतर पदार्थो से वह भिन्न है । इस इतरभेदसाध्यक अनुमिति में—( 'जो गन्धवाला है वह इतर पदार्थों से भिन्न है' ऐसा ) अन्वय-दृष्टान्त नहीं है, क्योंकि यहाँ तो पृथिवीमात्र को ही पक्ष बना लिया है ।

पक्षस्य किं लक्षणम् ?

**सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः। यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः।**

सपक्षस्य किं लक्षणम् ?

**निश्चितसाध्यवान् सपक्षः। यथा तत्रैव महानसम्।**

---

## न्यायबोधिनी

पक्षलक्षणमाह—**सन्दिग्धेति**। साध्यप्रकारकसन्देहविशेष्यत्वं पक्षत्वम्। सन्देहश्च पर्वतो वह्निमान्न वेत्याकारः। इदं च लक्षणमनुमितेः पूर्वं साध्यसन्देहो नियमेन जायत इत्यभिप्रायेण प्राचीनैः कृतम्। गगनविशेष्यकमेघप्रकारकसन्देहाभावदशायामपि गृहमध्यस्थपुरुषस्य घनगर्जितश्रवणेन गगनं मेघवदित्याकारिकाया गगनत्वावच्छिन्नोद्देश्यतनिरूपितमेघत्वावच्छिन्नविधेयताकाया अनुमितेर्दर्शनात्प्राचीनलक्षणं विहाय नवीनैरनुमित्युद्देश्यत्वं पक्षत्वमिति स्थिरीकृतम्।

सपलक्षणमाह—**निश्चितेति**। साध्यप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं सपक्षत्वम्। निश्चयश्च महानसं वह्निमदित्याकारकः।

## पदकृत्यम्

तस्य विपक्षविपर्ययेण तद्व्यावृत्तिविपर्ययात्। केवलव्यतिरेक्यपि तथा, तस्य सपक्षविपर्ययादिति, उपदर्शितरूपाणां मध्ये कतिपयरूपोपपन्नत्वात्।

अथ पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वादित्यत्र किं नाम पक्षतेत्यपेक्षायां तां निर्वक्ति—**सन्दिग्धेति**। सपक्षवारणाय सन्दिग्धेति।

**निश्चितेति**। पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति। **तत्रैवेति**। धूमवत्त्वहेतावेवेत्यर्थः।

## मेधा

जिसमें साध्य का संदेह हो वह पक्ष है। जैसे-धूम हेतु वाले स्थल में पर्वत पक्ष है।

जिसमें साध्य का निश्चय हो वह सपक्ष है। जैसे उसी जगह ('पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इस स्थल में) महानस सपक्ष (दृष्टान्त) है।

विपक्षस्य किं लक्षणम् ?

**निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः । यथा तत्रैव महाह्रदः ।**

हेत्वाभासाः कतिविधाः ?

**सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः ।**

सव्यभिचारस्य लक्षणं किं, कतिविधिश्च सः ?

**सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः । स त्रिविधः—साधारणाऽसाधारणा-**

---

न्यायबोधिनी

विपक्षलक्षणमाह—**निश्चितसाध्याभावेति** । साध्याभावप्रकारनिश्चयविशेष्यत्वं विपक्षत्वम् । निश्चयश्च ह्रदो वह्न्यभाववानित्यकारकः ।

एवं सद्धेतून्निरूप्य हेत्वाभासान्निरूपयति—**सव्यभिचारेति** । हेतुवदाभासन्त इति हेत्वाभासाः, दुष्टहेतव इत्यर्थः । दोषाश्च व्यभिचारविरोधसत्प्रतिपक्षासिद्धिबाधाः । एकज्ञानविषयकप्रकृतहेतुतावच्छेदकवत्त्वसम्बन्धेन एतद्विशिष्टा हेतवो दुष्टहेतव इत्यर्थः । यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकत्वं तत्त्वं दोषसामान्यस्य लक्षणम् । हेतौ दोषज्ञाने सत्यनुमितिप्रतिबन्धो जायते व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धो वा, अतो वादिनिग्रहाय वादिनोद्भावितहेतौ दोषोद्भावनाय दुष्टहेतुनिरूपणमित्यर्थः ।

सव्यभिचारं विभज्य दर्शयति—**साधारणेति** । साधारणाद्यन्यतमत्वं

पदकृत्यम्

**निश्चितेति** । सपक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्येति । पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति । तत्रैव—धूमवत्त्व एव ।

हेतुन्निरूप्य प्रसङ्गाद्धेत्वाभासानाह—**सव्यभिचारेति** । हेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः । तत्त्वं चानुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वम् । बाधस्थले वह्निरनुष्ण इत्यनुमितिप्रतिबन्धकं यज्ज्ञानमुष्णत्व-

मेधा

जिसमें साध्य के अभाव का निश्चय हो वह विपक्ष है । जैसे धूमहेतुक स्थल में ह्रद (झील) आदि ।

जो वास्तविक हेतु न हो पर हेतु की तरह मालूम हो वह हेत्वाभास

नुपसंहारिभेदात् ।

साधारणस्य किं लक्षणम् ?

**तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः। यथा पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वादिति। (अत्र) प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात् ॥**

---

## न्यायबोधिनी

सव्यभिचारसामान्यलक्षणम् । साधारणत्वं–साध्याभाववद्वृत्तित्वम् । वह्निमान् प्रमेयत्वादित्यत्र प्रमेयत्वहेतौ वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारे ज्ञाते वह्न्यभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ।

असाधारण इति । सर्वसपक्षव्यावृत्तित्वं निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वम् ।

## पदकृत्यम्

वह्न्यावनुष्णत्वसाधकं द्रव्यत्वमित्याकारकं तद्विषयत्वस्य विषयतासम्बन्धेन द्रव्यत्वरूपहेत्वाभासे सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। सद्धेतुवारणाय यथार्थेति। घटादिवारणाय अनुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकेति । व्यभिचारिणि अव्याप्तिवारणाय-तत्करणान्यतरेति ।

तत्रेति । साधारणादित्रितयमध्य इत्यर्थः। अथ विरुद्धेऽतिप्रसक्तिरिति मा स्म दृप्यः, सपक्षवृत्तित्वस्यापि निवेशात्। अथैवमपि स्वरूपासिद्धे दूषणं जागर्तीति मा वह गर्वम्, पक्षवृत्तित्वस्यापि तथात्वात् ।

## मेधा

कहलाता है। यह हेत्वाभास पाँच प्रकार का है—सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित ।

सव्यभिचार– जिसे अनैकान्तिक भी कहते हैं—तीन प्रकार का है—साधारण, असाधारण और अनुपसंहारी ।

साध्याभाववान् में भी रहनेवाले हेतु को साधारण हेतु कहते हैं। जैसे 'पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्' इस स्थल में प्रमेयत्व हेतु साध्याभावाधिकरण ( वह्न्यभावाधिकरण ) जलाशय ( तालाब आदि ) में भी रहता है, अतः वह साधारण अनैकान्तिक है ।

असाधारणस्य किं लक्षणम् ?

**सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः। यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति। (अत्र) शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति।**

अनुपसंहारिणः किं लक्षणम् ?

**अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी। यथा सर्वमनित्यं**

---

न्यायबोधिनी

साध्यवदवृत्तित्वं च साध्यासामानाधिकरण्यम्। हेतौ साध्यासामानाधिकरण्ये निश्चिते साध्यसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम्।

अनुपसंहारिणं लक्षयति—अन्वयेति। उभयत्र दृष्टान्ताभावादन्वयव्याप्तिज्ञानव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानोभयसामग्री नास्तीत्यर्थः। (सर्वस्यैव पक्षत्वात्पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः।) किञ्चिद्विशेष्यकनिश्चयाविषयकसाध्यकत्वे सति किञ्चिद्विशेष्यकनिश्चयाविषयकसाध्याभावकत्वमेवानुपसंहारित्वम्। एतदीयज्ञानस्य व्याप्तिसंशयजननद्वारा व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम्।

पदकृत्यम्

पक्षमात्रेति। सर्वे ये सपक्षा विपक्षास्तेभ्यो व्यावर्तत इति सपक्षविपक्षव्यावृत्तः। केवलव्यतिरेकिवारणाय तद्भिन्न इत्यपि देयम्।

अन्वयेति। केवलान्वयिन्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेति। केवलव्यति-

मेधा

जो हेतु सभी सपक्षों में तथा विपक्षों में न रहे किन्तु केवल पक्ष में रहे वह हेतु असाधारण है। जैसे 'शब्दो नित्यः शब्दत्वात्'—इस जगह शब्दस्वरूप हेतु सपक्ष और विपक्ष में [ नित्य और अनित्य पदार्थों में ] नहीं रहता है, किन्तु शब्दरूप पक्ष [ संदिग्धसाध्यवान् ] में ही रहता है। अतः यह असाधारण हेतु हुआ। जिस हेतु में अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त न हों, वह अनुपसंहारी है। जैसे—'सर्वमनित्यं प्रमेयत्वात्' इस

**प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वाद् दृष्टान्तो नास्ति ।**

विरुद्धस्य किं लक्षणम् ?

**साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः । यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वाद् घटवदिति । अत्र कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनाऽनित्यत्वेन व्याप्तम् ।**

सत्प्रतिपक्षस्य किं लक्षणम् ?

**साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः । यथा शब्दो**

---

न्यायबोधिनी

वस्तुतस्तु अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यादिकमेवानुपसंहारित्वमिति बोध्यम् ।

विरुद्धं लक्षयति—**साध्याभावव्याप्त इति ।** साध्याभावव्याप्तिः—साध्याभावनिरूपितव्यतिरेकव्याप्तिः— साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम्, तथाच पक्षविशेष्यकसाध्याभावव्याप्यहेतुप्रकारकज्ञानात् पक्षविशेष्यकसाध्यप्रकारकानुमितिप्रतिबन्धः फलम् । एवं सत्प्रतिपक्षेऽपि । विरुद्धसत्प्रतिपक्षयोर्विशेषस्तु विरुद्धहेतोरेकत्वेन सत्प्रतिपक्षहेतोर्द्वित्वेन च ज्ञातव्यः । साध्या-

पदकृत्यम्

रेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरेकेति । **अत्रेति** । उपदर्शितानुमान इत्यर्थः ।

विरुद्धं लक्षयति—**साध्येति** । सद्धेतुवारणाय साध्याभावव्याप्त इति । सत्प्रतिपक्षवारणाय सत्प्रतिपक्षभिन्न इत्यपि बोध्यम् । **कृतकत्वादिति ।** कार्यत्वादित्यर्थः । **अनित्यत्वेन व्याप्तमिति** । यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यमिति व्याप्तिर्भवत्येव तथेति भावः ।

सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—**साध्येति** । यस्य हेतोः साध्याभावसाधकं

मेधा

स्थल में सभी पदार्थ पक्ष के अन्तर्भूत हैं, अतः कोइ भी दृष्टान्त नहीं है ।

जो हेतु साध्याभाव से व्याप्त है वह 'विरुद्ध' कहलाता है। जैसे 'शब्दो नित्यः कृतकत्वात्' इस स्थल में कृतकत्व ( कार्यत्व ) हेतु नित्यत्वाभाव ( अनित्यत्व ) से व्याप्त है ।

जिस हेतु के साध्य के अभाव को सिद्ध करने वाला दूसरा हेतु विद्यमान हो वह सत्प्रतिपक्ष कहलाता है । जैसे 'शब्दो नित्यः, श्रावणत्वात्'—

**नित्य: श्रावणत्वाच्छब्दत्ववत्, शब्दोऽनित्य: कार्यत्वाद् घटवत् ।**

असिद्ध: कतिविध: ?

**असिद्धस्त्रिविध:—आश्रयासिद्ध: स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति ।**

आश्रयासिद्ध: क: ?

**आश्रयासिद्धो यथा गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् सरोजा-**

---

न्यायबोधिनी

भावव्याप्यप्रतिहेतुमत्पक्ष: सत्प्रतिपक्ष इति यावत् । साध्याभावसाधकहेतु: साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्त इत्यसामर्थ्यसूचनमपि ।

आश्रयासिद्ध इति । आश्रयासिद्धिर्नाम पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षाप्रसिद्धि: । यथेति । अत्रारविन्दे गगनीयत्वाभावे निश्चिते गगनीयत्वविशिष्टारविन्दे सौरभ्यानुमितिप्रतिबन्ध: फलम् ।

पदकृत्यम्

साध्याभावस्यानुमापकं हेत्वन्तरं प्रतिपक्षो हेतु: विद्यते स हेतु: सत्प्रतिपक्ष इत्यर्थ: । अयमेव प्रकरणसम इत्युच्यते । विरुद्धवारणाय हेत्वन्तरं यस्येति । वह्न्यादिवारणाय साध्याभावेति ।

असिद्धं विभजते—असिद्ध इति । आश्रयासिद्धयाद्यन्यतमत्वमसिद्धत्वम् । आश्रयासिद्धत्वं च पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम् । भवति हि अरविन्दत्वे गगनीयत्वरूपपक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम्—अरविन्दरूपपक्षे गगनीयत्व-

मेधा

इस स्थल में 'शब्दोऽनित्य:, कार्यत्वात् घटवत्' यह कार्यत्वहेतु साध्याभाव ( अनित्यत्व ) का साधक बैठा है, अत: श्रावणत्व हेतु सत्प्रतिपक्षित है ।

असिद्ध तीन प्रकार का है--आश्रयाऽसिद्ध, स्वरूपाऽसिद्ध और व्याप्यत्वासिद्ध । 'गगनारविन्दं सुरभि, कमलत्वात्, सरोजारविन्दवत्' ( आकाश-कमल सुगन्धित है, क्योंकि वह कमल है, तालाब के कमल की तरह ) इस स्थल में आकाशकमलरूप आश्रय ही असिद्ध है । क्योंकि आकाश में कमल

**रविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, स च नास्त्येव ।**

स्वरूपासिद्धस्य किं रूपम् ?

**स्वरूपासिद्धो यथा शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति, शब्दस्य श्रावणत्वात् ।**

व्याप्यत्वासिद्धः कः ? किञ्चोपाधिस्वरूपम् ?

**सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः । साध्यव्यापकत्वे सति साधना-**

---

न्यायबोधिनी

**स्वरूपासिद्ध इति** । स्वरूपासिद्धिर्नाम पक्षे हेत्वभावः । तथा च हेत्वभावविशिष्टपक्षज्ञानात्पक्षविशेष्यकहेतुप्रकारकपरामर्शानुपपत्त्या परामर्शप्रतिबन्धः फलम् ।

**व्याप्यत्वासिद्ध इति** । प्रकृते धूमव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं

पदकृत्यम्

विरहात् । ननु कथमरविन्दे गगनीयत्वविरहोऽत आह—**अत्रेति** । उपदर्शितानुमान इत्यर्थः । पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः । सिद्धे त्वभावेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षे इति । घटाद्यभाववारणाय हेत्विति । सोऽयं स्वरूपासिद्धः शुद्धासिद्धभागासिद्धविशेषणासिद्धविशेष्यासिद्धभेदेन चतुर्विधः । तत्राद्यस्तूपदर्शित एव । द्वितीयो यथा—उद्भूतरूपादिचतुष्टयं गुणः रूपत्वादित्यत्र रूपत्वहेतोः पक्षैकदेशवृत्तित्वेन तस्य भागे स्वरूपासिद्धत्वम् । तृतीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वादित्यत्र रूपवत्त्वविशेषणस्य वायावभावात्तद्विशिष्टस्पर्शवत्त्वस्यापि तथात्वेन तस्य स्वरूपासिद्धत्वं निर्वहति, विशेषणाभावे विशिष्टस्याप्यभावात् । तुरीयो यथा—अत्रैव विशेषणविशेष्य-

मेधा

होता ही नहीं है । अतः यह आश्रयाऽसिद्ध का उदाहरण है ।

'शब्दो गुणः चाक्षुषत्वात्' इस स्थल में शब्द में चाक्षुषत्व ( आंखों से देखे जाने की योग्यता ) यह धर्म है हीं नहीं, क्योंकि शब्द तो कानों से सुना जाता है, न कि आंखों से देखा जाता है । अतः यह स्वरूपाऽसिद्ध का उदाहरण है, क्योंकि शब्द में चाक्षुषत्व हेतु ही असिद्ध है ।

**व्यापकत्वमुपाधिः । साध्यसमानाधिकरणात्यंताभावाप्रतियोगित्वं**

न्यायबोधिनी

चेद्धूमे आर्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यत्वं गृहीतम् । एवं वह्नेरव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेद्वह्नौ तदव्याप्यत्वं गृहीतम् । तदेव व्यभिचरितत्वम् । तथा चोपाधिव्यभिचारित्वं साधने गृहीतं चेदुपाधिभूतार्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यधूमव्यभिचारित्वं गृहीतमेव । अनुमानप्रकारश्च पूर्वानुमानहेतुं पक्षीकृत्य वह्निर्धूमव्यभिचारी धूमव्यापकार्द्रेन्धनसंयोगव्यभिचारित्वात्, घटत्वादिवत्, यो यत्साध्यव्यापकव्यभिचारी स सर्वोऽपि साध्यव्यभिचारीति रीत्या बोध्यः । एवं

पदकृत्यम्

वैपरीत्येन हेतुः । तस्य स्वरूपासिद्धत्वं तु विशेष्याभावप्रयुक्तविशिष्टाभावादिति बोध्यम् ।

व्याप्यत्वासिद्धं निरूपयति—सोपाधिक इति । ननु कोऽयमुपाधिरत आह—साध्येति । साधनव्यापक उपाधिरित्युक्ते शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादित्यत्र सामान्यत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणार्हत्वमप्युपाधिः स्यात्तदर्थं साध्यव्यापकत्वमुक्तम् । तावत्युक्ते सामान्यवत्त्वादिनाऽनित्यत्वसाधने कृतकत्वमुपाधिः स्यात्तदर्थं साधनाव्यापकत्वम् । उपाधिभेदमादायासम्भववारणाय व्यापकत्वशरीरेऽप्यत्यन्तपदमादेयम् । साधनभेदमादाय साधनस्योपाधित्ववारणायाव्यापकत्वशरीरेऽप्यत्यन्तपदमवश्यं देयम् । सोऽयमुपाधिस्त्रिविधः-केवलसाध्यव्यापकः पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति । तत्राद्य उपदर्शितः । एवं क्रत्वन्तर्वर्तिनी हिंसा अधर्मजनिका हिंसात्वात् क्रतुबाह्यहिंसावदित्यत्र निषिद्धत्वमुपाधिः । तस्य यत्राधर्मजनकत्वं तत्र निषिद्धत्वमिति साध्यव्यापकता । यत्र हिंसात्वं तत्र न निषिद्धत्वमिति निषिद्धत्वमुपाधिः साध्यव्यापकः, क्रतुहिंसायां निषिद्धत्वस्याभावात् । 'न

मेधा

जो हेतु उपाधि के सहित हो, उसका नाम व्याप्यत्वाऽसिद्ध है ।

जो साध्य का व्यापक हो और हेतु का अव्यापक हो वह उपाधि कहलाता है । साध्य के अधिकरण में रहने वाले अभाव का जो प्रतियोगी

**साध्यव्यापकत्वम् । साधनवन्निष्ठात्यंताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम् । पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वादित्यत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकता । यत्र**

---

न्यायबोधिनी

प्रकारेण प्राकृतानुमानहेतुभूते पक्षे साध्यव्यभिचारोत्थापकतया दूषकत्वमुपाधेः फलम् । तथा च धूमाभाववदवृत्तित्वाभावरूपधूमव्यभिचारे गृहीते वह्नौ धूमाभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबंधः फलम् । न च व्याप्यत्वासिद्धेः व्यभिचारादभेद इति वाच्यम् । धूमाभाववदवृत्तित्वाभावाभावत्वेन

पदकृत्यम्

हिंस्यात्सर्वा भूतानि' इति सामान्यवाक्यतः 'पशुना यजेत' इत्यादिविशेषवाक्यस्य बलीयस्त्वात् । अतो हिंसात्वं नाधर्मजनकत्वे प्रयोजकमपि तु निषिद्धत्वमेवेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । द्वितीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः । तस्य यत्र प्रत्यक्षत्वं तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति न, केवलसाध्यव्यापकत्वरूपे व्यभिचारात्, किन्तु द्रव्यत्वरूपो यः पक्षधर्मस्तदवच्छिन्नबहिःप्रत्यक्षत्वं यत्र तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । आत्मनि व्यभिचारवाणाय बहिःपदम् । यत्र प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं तत्र नोद्भूतरूपवत्त्वमिति साधनाव्यापकत्वं च, वायावुद्भूतरूपविरहात् । तृतीयो यथा-ध्वसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र भावत्वमुपाधिः । तस्य यत्र विनाशित्वं तत्र भावत्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वम्, प्रागभागे भावत्वविरहात्, किन्तु जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नविनाशित्वं यत्र

मेधा

न हो वह 'साध्यव्यापक' कहलाता है । जो हेतु के अधिकरण में रहने वाले अभाव का प्रतियोगी हो वह 'साधनाऽव्यापक' कहलाता है ।

जैसे 'धूमवान् वह्नेः' इस स्थल में आर्द्रेन्धनसंयोग ( अग्नि से गीली लकडी का सम्बन्ध ) उपाधि है । क्योंकि—जहां-जहां धूम है वहां-वहां आर्द्र इन्धन ( गीली लकड़ी ) का संयोग है, अतः आर्द्रेन्धनसंयोग साध्य ( धूम ) का व्यापक है । और जहां-जहां अग्नि है वहां-वहां सभी जगह

**वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगाभावादिति साधनाव्यापकता। एवं साध्यव्याप[कत्वे] सति साधनाव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम्।**

बाधितस्य किं लक्षणम्?

**यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः। यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति। अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं**

---

न्यायबोधिनी

व्याप्यत्वासिद्धत्वं, धूमाभाववदवृत्तित्वेन व्यभिचारत्वमिति भेदात्।

**यस्येति।** यस्य हेतोः साध्याभावः साध्यबाधः प्रमाणान्तरेण प्रत्यक्षादिप्रमाणेन पक्षे निश्चितः स बाधित इत्यर्थः। तथा च प्रात्यक्षिकसाध्यबाधनिश्चये जाते साध्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम्। बाधितसाध्यकत्वाद्बाधितो

पदकृत्यम्

तत्र भावत्वमिति साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। यत्र जन्यत्वं तत्र न भावत्वमिति साधनाव्यापकत्वञ्च, ध्वंसे भावत्वविरहात्। एवं स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजन्यत्वमुपाधिः। श्यामत्वस्य नीलघटेऽपि सत्त्वान्न केवलसाध्यकव्यापकत्वम्, किन्तु साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। अष्टमे पुत्रे शाकपाकजन्यत्वविरहेण साधनाव्यापकत्वं चेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम्।

**यस्येति।** सद्धेतुवारणाय प्रमाणान्तरेणेति। घटादिवारणाय साध्येति॥

इति पदकृत्येऽनुमानखण्डम्॥

मेधा

आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं है, जैसे आग से लाल लोहे के गोले में, अतः आर्द्रेन्धनसंयोग हेतु का अव्यापक भी है। अतः साध्य का व्यापक और हेतु का अव्यापक होने से 'आर्द्रेन्धनसंयोग' 'उपाधि' हुआ और उपाधि सहित होने से धूमसाध्यक वह्निरूप हेतु व्याप्यत्वाऽसिद्ध हुआ।

जिस हेतु के साध्य का अभाव ( साध्याभाव ) प्रमाणान्तर से निश्चित हो वह हेतु बाधित है। जैसे "वह्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात्' इस स्थल में

स्पार्शनप्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम् ॥

इत्यनुमानखण्डम् ॥

———०———

## अथोपमानखण्डम्

उपमानलक्षणं किम् ?

**उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः, तत्करणं**

---

### न्यायबोधिनी

हेतुरित्युच्यते ॥

इति न्यायबोधिन्यामनुमानखण्डम् ॥

—:०:—

उपमानं लक्षयति—उपमितकरणमिति । उपमितिं लक्षयति—

### पदकृत्यम्

अवसरसङ्गतिमभिप्रेत्यानुमानानन्तरमुपमानं निरूपयति–उपमितीति । उपमितेः करणमुपमानमित्यर्थः । कुठारादिवारणाय मितीति । प्रत्यक्षादिवारणाय उपेति । संज्ञासंज्ञीति । अनुमित्यादिवारणाय सम्बन्धेति । संयोगादिवारणाय संज्ञासंज्ञीति । असौ गवयशब्दवाच्य इति । अभिप्रेतो

### मेधा

अनुष्णत्वस्वरूप साध्य का अभाव—[ उष्णत्व ]—प्रत्यक्षरूप प्रमाण से ही सिद्ध है, अतः यह हेतु बाधित है ॥

### उपमानपरिच्छेद

उपमिति का करण 'उपमान' कहलाता है ।

पद और पदार्थ इन दोनों का जो वाच्यवाचकभावस्वरूप सम्बन्ध है उसका ज्ञान ही उपमिति है ।

**सादृश्यज्ञानम् । तथाहि—कश्चिद्गवयपदार्थमजानन्कुतश्चिदारण्यक-पुरुषाद्—गोसदृशो गवय—इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन्गो-सदृशं पिण्डं पश्यति, तदनन्तरमसौ गवयशब्दवाच्य इत्युपमिति-**

---

न्यायबोधिनी

संज्ञेति । संज्ञा नाम पदम्, संज्ञी अर्थः, तयोः सम्बन्धः शक्तिः । तथा च पदपदार्थसम्बन्धज्ञानमुपमितिरित्यर्थः । उपमानं नामातिदेशवाक्यार्थज्ञानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणं व्यापारः । उपमितिः फलम् । गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्याकारकवाक्याद् गोसादृश्यावच्छिन्नविशेष्यकगवयपदवाच्यत्वप्रकारेण

पदकृत्यम्

गवयो गवयपदवाच्य इत्यर्थः । तेन गवयान्तरे शक्तिग्रहाभावप्रसङ्ग इति दूषणमपास्तम् । तथा च गोसादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानं करणम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । उपमितिः फलमिति सारम् । तच्चोपमानं त्रिविधम्—सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानमसाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञानं वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं च । तत्राद्यमुक्तमेव । द्वितीयं यथा—खड्गमृगः कीदृगिति पृष्टे नासिकालसदेकशृङ्गोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्चेति तज्ज्ञातृभ्यः श्रुत्वा कालान्तरे तादृशं पिण्डं पश्यन्नतिदेशवाक्यार्थं स्मरति, तदनन्तरं खड्गमृगः खड्गपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते । अत्र नासिकालसदेकशृङ्ग एवासाधारणधर्मः । तृतीयं यथा-उष्ट्रः कीदृगिति पृष्टे अश्वादिवन्न समानपृष्ठो न ह्रस्वग्रीवशरीरश्चेति आप्तोक्ते कालान्तरे तत्पिण्डज्ञानं ततोऽतिदेशवाक्यार्थ

मेधा

उस उपमिति का करण सादृश्यज्ञान है । [ अतः सादृश्यज्ञान ही 'उपमान' है ] ।

जैसे किसी मनुष्य ने—जो 'गवय' शब्द का अर्थ ( गवय ) क्या वस्तु है— यह नहीं जानता था, पर किसी वनेचर से—जिसे गवय शब्द का अर्थ [ गवय ] मालूम था, सुना था कि—'गवय गाय की तरह का एक जंगली पशु होता है ।' और जब वन में उसने गौ के सदृश किसी जन्तु [ गवय ] को देखा, तब उसे 'गौ के सदृश गवय होता है' इस वाक्यार्थ का

**रुत्पद्यते ॥**

इत्युपमानखण्डम् ॥

——०——

## अथ शब्दखण्डम्

शब्दप्रमाणस्य किं स्वरूपम् ?

**आप्तवाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता । वाक्यं पदसमूहः,**

---

न्यायबोधिनी

यज्ज्ञानं जायते तदेव करणम् ॥

इति न्यायबोधिन्यामुपमानखण्डम् ॥

—:०:—

शब्दं लक्षयति—**आप्तेति** । आप्तोच्चरितत्वे सति वाक्यत्वं शब्दस्य लक्षणम् । (प्रमाणशब्दत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम्) । वाक्यत्वमात्रोक्तावनाप्तोच्चरितवाक्येऽतिव्याप्तिरत आप्तोच्चरितत्वनिवेशः । तावन्मात्रोक्तौ जबगडदशा-

पदकृत्यम्

स्मरणं तत उष्ट्र उष्ट्रपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥

इति पदकृत्ये उपमानखण्डम् ॥

—:०:—

अवसरसङ्गतिमभिप्रेत्योपमानानन्तरं शब्दं निरूपयति—**आप्तेति** । **शब्द इति** । शब्दप्रमाणमित्यर्थः । भ्रान्तविप्रलम्भकयोर्वाक्यस्य शब्दप्रमाणत्ववार-

मेधा

स्मरण हुआ । तदनन्तर उसको 'यह गवय गवय शब्द का वाच्य है'—यह उपमिति होती है ॥

### शब्दपरिच्छेद

**आप्त पुरुष का उच्चरित वाक्य ही शब्द नामक प्रमाण है ।**

**यथार्थ [ ठीक-ठीक ] कहने वाला पुरुष आप्त है ।**

**पदों का समूह 'वाक्य' होता है । जैसे—'गामानय' इत्यादि 'वाक्य' कहलाते हैं ।**

**यथा गामानयेति । शक्तं पदम् । अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वर-सङ्केतः शक्तिः ।**

वाक्यार्थज्ञाने के हेतवः ?

**आकाङ्क्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः । पदस्य**

---

न्यायबोधिनी

दावतिव्याप्तिरतो वाक्यत्वम् । आप्तत्व च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानजन्यशब्दत्व-मिति पर्यवसन्नोऽर्थः । वस्तुतस्तु पदज्ञानं करणम् । वृत्तिज्ञानसहकृतपदज्ञान-जन्यपदार्थोपस्थितिर्व्यापारः । वाक्यार्थज्ञानं शाब्दबोधः फलम् । वृत्तिर्नाम शक्तिलक्षणान्यतररूपा । शक्तिर्नाम घटादिविशेष्यकघटादिपदजन्यबोधविषय-त्वप्रकारक ईश्वरसङ्केतो नाम ईश्वरेच्छा, सैव शक्तिरित्यर्थः । शक्तिनिरूपकत्वमेव पदे शक्तत्वम् । विषयतासम्बन्धेन शक्त्याश्रयत्वमर्थे शक्यत्वम् । शक्यसम्बन्धो लक्षणा । सा द्विविधा—गौणी शुद्धा चेति । गौणी नाम सादृश्यविशिष्टे लक्षणा । यथा सिंहो माणवक इत्यादौ सिंहपदस्य सिंहसादृश्यविशिष्टे लक्षण । शुद्धा त्रिविधा—जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा जहदजहल्लक्षणा चेति । लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यमात्रबोधप्रयोजिका लक्षणा जहल्लक्षणा । यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदवाच्यप्रवाह-

पदकृत्यम्

णाय आप्तेति । ननु कोऽयमाप्त इत्यत आह—**आप्तस्त्विति** । यथार्थवक्ता यथाभूताबाधितार्थोपदेष्टा । वाक्यं लक्षयति—**वाक्यमिति** । घटादिसमूह-वारणाय पदेति । **शक्तमिति** । निरूपकतासम्बन्धेन शक्तिविशिष्टमित्यर्थः । **अस्मादिति** । घटपदाद्घटरूपोऽर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छैव शक्तिरित्यर्थः । अर्थस्मृत्यनुकूलपदार्थसम्बन्धत्वं तल्लक्षणम् । सा च त्रिधा—जहद्-अजहद्-जहदजहद्भेदात् । वर्तते च गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदशक्यप्रवाह-

मेधा

जिनमें शक्ति होती है वे 'पद' कहलाते हैं और इस पद से यह अर्थ समझना चाहिए' यह जो ईश्वर का संकेत है वही शक्ति कहलाता है ।

आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि का ज्ञान वाक्यार्थज्ञान में हेतु है ।

**पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाकाङ्क्षा । अर्थाबाधो योग्यता । पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः । तथा च आकाङ्क्षा-**

## न्यायबोधिनी

सम्बन्धस्य तीरे सत्त्वात्तादृशशक्यसम्बन्धरूपलक्षणाज्ञानाद्गङ्गापदात्तीरोपस्थितिः । लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यशक्योभयबोधप्रयोजिका लक्षणा अजहल्लक्षणा । यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काकपदस्य दध्युपघातके लक्षणा, लक्ष्यता वच्छेदकं दध्युपघातकत्वम्, तेन रूपेण दध्युपघातकानां सर्वेषां काकबिडालकुक्कुटसारमेयादीनां शक्यलक्ष्याणां बोधात् । जहदजहल्लक्षणा वेदान्तिनां मते । सा च शक्यतावच्छेदकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधप्रयोजिका । यथा तत्त्वमसीत्यत्र सर्वज्ञत्वकिञ्चिज्ज्ञत्वपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधनात् ।

आकाङ्क्षां लक्षयति—पदस्येति । अव्यवहितोत्तरत्वादिसम्बन्धेन यत्पदे यत्पदप्रकारकज्ञानव्यतिरेकप्रयुक्तो यादृशशाब्दबोधाभावस्तादृशशाब्दबोधे तत्पदे तत्पदवत्त्वमाकाङ्क्षा । यथा घटमित्यादिस्थलेऽव्यवहितोत्तरत्वादिसम्बन्धेनाम्पदं घटपदवदित्याकारकाम्पदविशेष्यकघटपदप्रकारकज्ञानसत्त्वे घटीयं कर्मत्वमिति बोधो जायते । अम्घट इति विपरीतोच्चारणे तु तादृशशाब्दबोधो न जायतेऽतस्तादृशाकाङ्क्षाज्ञानं शाब्दबोधे कारणम् ।

## पदकृत्यम्

सम्बन्धस्तीरे । लक्षणाबीजं च तात्पर्यानुपपत्तिः । अत एव प्रवाहे घोषतात्पर्यानुपपत्तेस्तीरे लक्षणा सेत्स्यति । छत्रिणो यान्तीत्यादौ द्वितीया । सोऽयमश्व इत्यादौ तृतीया ।

असम्भववारणाय पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तेति । पुनरसम्भववारणाय पदान्तरेति । **अर्थेति** । आकाङ्क्षावारणाय अर्थेति । **पदानामिति** ।

## मेधा

दूसरे पद के नहीं रहने से दूसरे पद में जो शाब्दबोधाऽजनकता है वही आकांक्षा है ।

एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध रहना ही 'योग्यता' है ।

पदों के बिना विलम्ब के उच्चारण करना ही सन्निधि है ।

**विरहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम्, आकाङ्क्षाविरहात् । वह्निना सिञ्चतीति न प्रमाणम्, योग्यताविरहात् । प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्यादिपदानि न प्रमाणम्, सान्निध्याभावात् ।**

वाक्यं कतिविधम् ?

**वाक्यं द्विविधम्—वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वं-**

---

न्यायबोधिनी

**अर्थाबाध इति ।** बाधाभावो योग्यतेत्यर्थः । अग्निना सिञ्चतीत्यत्र सेककरणत्वस्य जलादिधर्मस्य वह्नौ बाधनिश्चयसत्त्वान्न तादृशवाक्याच्छाब्दबोधः । सन्निधिं निरूपयति—**पदानामिति ।** असहोच्चारितानि—विलम्बोच्चारितानि ।

**वैदिकमिति ।** वेदवाक्यमित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । वेदमूलस्मृत्यादीन्यपि

पदकृत्यम्

असहोच्चारितेष्वतिव्याप्तिवारणाय अविलम्बेनेति । आकाङ्क्षावारणाय पदानामिति । आकाङ्क्षादिशून्यवाक्यस्यात्र प्रमाणत्वं निषेधति—**तथा चेति ।** आकाङ्क्षादिकं शाब्दहेतुरित्युक्ते चेत्यर्थः । अनाकाङ्क्षामुदाहरणं दर्शयति—**यथेति ।**

मेधा

आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि से रहित जो वाक्य है वह प्रमाण नहीं होता । जैसे 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इस तरह का वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि इस वाक्य में परस्पर आकांक्षा नहीं है, और 'अग्नि से सींचता है' यह वाक्य भी प्रमाण नहीं है, क्योंकि इसमें [ अग्नि में सींचने की ] योग्यता हीं नहीं है । और एक-प्रहर के बाद उच्चारण किये गये 'गाम्'– 'आनय' इत्यादि पद भी प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि इनमें 'सन्निधि' नहीं है ।

वाक्य दो प्रकार का है– वैदिक और लौकिक । वैदिक ( वेदोक्त ) वाक्य ईश्वर के वाक्य हैं, अतः वे सभी प्रमाण हैं । लौकिक वाक्य तो आप्तपुरुषोच्चरित हीं प्रमाण है । जो लौकिक वाक्य आप्त पुरुष से

**मेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम् ।**

शाब्दज्ञानं किम् ?

**वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम् । तत्करणं तु शब्दः ॥**

इति शब्दखण्डम् ॥

———०———

न्यायबोधिनी

ग्राह्याणि । लौकिकं त्विति । वेदवाक्यभिन्नमित्यर्थः ॥

इति न्यायबोधिन्यां शब्दखण्डम् ॥

—:०:—

पदकृत्यम्

नन्वेतावता शाब्दसामग्री प्रपञ्चिता, प्रमाविभाजकवाक्ये शाब्दस्याप्युद्दिष्टत्वेन तत्कुतो न प्रदर्शितमित्यत आह—वाक्यार्थेति । शाब्दत्वं च शब्दात्प्रत्येमीत्यनुभवसिद्धा जातिः । शाब्दबोधक्रमो यथा—चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यत्र ग्रामकर्मकगमनानुकूलवर्तमानकृतिमांश्चैत्र इति शाब्दबोधः । द्वितीयायाः कर्मत्वमर्थः । धातोर्गमनम् । अनुकूलत्वं च संगर्ममर्यादया भासते । लटो वर्तमानत्वमाख्यातस्य कृतिः । तत्सम्बन्धः संसर्गमर्यादया भासते । रथो गच्छतीत्य गमनानुकूलव्यापारवान् रथः इति शाब्दबोधः । स्नात्वा गच्छतीत्यत्र गमनप्रागभावावच्छिन्नकालीनस्नानकर्ता गमनानुकूलवर्तमानकृतिमानिति शाब्दबोधः । क्त्वाप्रत्ययस्य कर्ता पूर्वकालीनत्वं चार्थः । एवमन्यत्रापि वाक्यार्थो बोध्यः ॥

इति पदकृत्ये शब्दखण्डम् ॥

—:०:—

मेधा

उच्चरित नहीं हैं वे प्रमाण नहीं हैं ।

वाक्य के अर्थ को समझना ही शाब्दज्ञान ( शाब्दबोध ) हैं । उस शाब्दबोध का करण शब्द है । अतः शब्द ही शब्द-प्रमाण है ।

## अथावशिष्टगुणनिरूपणम्

अयथार्थानुभवस्य कति भेदाः ?

**अयथार्थानुभवस्त्रिविधः—संशयविपर्ययतर्कभेदात् ।**

संशयस्य किं लक्षणम् ?

**एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं संशयः । यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ।**

विपर्ययः कः ?

**मिथ्याज्ञानं विपर्ययः । तथा शुक्तौ 'रजतम्' इति ।**

---

न्यायबोधिनी

यथार्थानुभवं निरूप्यायथार्थानुभवं विभजते—**संशयेत्यादिना** ।

**एकेति** । एकधर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितभावाभावप्रकारकज्ञानं संशय इत्यर्थः । भावद्वयकोटिकसंशयाप्रसिद्धेः स्थाणुर्वेत्यत्र स्थाणुत्वस्थाणुत्वाभाव-पुरुषत्वपुरुषत्वाभावकोटिक एव संशय इत्यर्थः ।

**मिथ्याज्ञानमिति** । अयथार्थज्ञानमित्यर्थः । विपर्ययो नाम भ्रमः ।

पदकृत्यम्

अयथार्थानुभवं विभजते—**अयथार्थेति** ।

संशय लक्षयति—**एकस्मिन्निति** । एकस्मिन्धर्मिणि एकस्मिन्नेव पुरोवर्तिनि पदार्थे विरुद्धा व्यधिकरणा ये नानाधर्माः स्थाणुत्वपुरुषत्वादय-स्तेषां वैशिष्ट्यं सम्बन्धः तदवगाहि ज्ञानं संशयः । घटपटाविति समूहालम्बन-ज्ञानस्य घटत्वपटत्वरूपविरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय एकस्मिन्निति । घटः पृथिवीति ज्ञानस्यैकस्मिन्धर्मिणि घटे घटत्वपृथिवीत्व-रूपनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसङ्गवारणाय विरुद्धेति । घटत्वविरुद्ध-पटत्ववान्पट इति ज्ञानेऽतिप्रसक्तिवारणाय नानेति ।

**मिथ्येति** । यथार्थज्ञानवारणाय मिथ्येति । अयथार्थवारणाय ज्ञानेति ।

मेधा

**अयथार्थ अनुभव तीन प्रकार का है—संशय, विपर्यय और तर्क । एक धर्मी ( विशेष्य ) में परस्पर-विरुद्ध नाना धर्मों का ज्ञान ही 'संशय' है । जैसे वृक्ष में—यह 'स्थाणु ( सूखा वृक्ष ) है, या पुरुष है ?' यह ज्ञान ।**

तर्कस्य किं स्वरूपम् ?

**व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति ॥**

स्मृतिः कतिविधा ?

**स्मृतिरपि द्विविधा—यथार्था अयथार्था च। प्रमाजन्या यथार्था, अप्रमाजन्या अयथार्था।**

सुखस्य किं लक्षणम् ?

**सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम्।**

---

न्यायबोधिनी

व्यापारोपेणेति। तर्के व्याप्यस्य व्यापकस्य च बाधनिश्चयः कारणम्, अन्यथा बाधनिश्चयाभाव इष्टापत्तिदोषेण तर्कानुत्पत्तेः।

सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति। इतरेच्छाऽनधीनेच्छाविषयत्वमिति निष्कर्षः। यथाश्रुते घटोऽनुकूल इत्याकारकज्ञानदशायामनुकूलत्वप्रकारकज्ञान-

पदकृत्यम्

तर्कं लक्षयति—व्याप्यारोपेणेति। असम्भववारणाय व्याप्यारोपेणेति। पुनरसम्भववारणाय व्यापकारोप इति। अत्र वह्न्यभावो व्याप्यः धूमाभावो

मेधा

मिथ्याज्ञान 'विपर्यय' कहलाता है। जैसे सीप में 'यह चाँदी है' यह ज्ञान।

व्याप्य के आरोप से व्यापक का आरोप (झूठा ज्ञान) करना 'तर्क' है। जैसे—'अग्नि न होता तो धूम भी न होता'।

स्मृति दो प्रकार की है, यथार्थ और अयथार्थ।

जो स्मृति यथार्थ ज्ञान से उत्पन्न संस्कार से जन्य हो वह यथार्थ है।

जो अयथार्थ ज्ञान से उत्पन्न संस्कार से जन्य हो वह अयथार्थ है।

जो सभी को अनुकूल (प्रिय) मालूम पड़े वह 'सुख' है।

दुःखस्य किं लक्षणम् ?

**प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ।**

---

न्यायबोधिनी

विशेष्यत्वस्य घटादावपि सत्त्वाद्घटादावतिव्याप्तिरिति । सुखेच्छाधीने भोजनादावतिव्याप्तिवारणाय इतरेच्छानधीनेतीच्छाविशेषणम् । सुखेच्छा तु सुखत्वप्रकारकज्ञानमात्रजन्यैव ।

दुःखं निरूपयति—**प्रतिकूलेति** । अत्रापीतरद्वेषानधीनद्वेषविषयत्वमिति निष्कृष्टलक्षणम् । द्वेषविषयत्वमात्रोक्तौ सर्पादावतिव्याप्तिस्तत्रापि द्वेषविषयत्वसत्त्वादतस्तत्रातिव्याप्तिवारणायेतरद्वेषानधीनेति द्वेषविषेणम्, सर्पजन्यदुःखादौ द्वेषात्सर्पेऽपि द्वेष इति सर्पद्वेषस्य सर्पजन्यदुःखद्वेषजन्यत्वादन्यद्वेषाजन्यद्वेषविषयत्वरूपदुःखलक्षणस्य सर्पादौ नातिव्याप्तिः । फलेच्छा उपायेच्छां प्रति कारणम्, अतः फलेच्छावशादुपायेच्छा भवति । एवं फले द्वेषादुपाये द्वेषः ।

पदकृत्यम्

व्यापकः । यद्यपि तर्कस्य विपर्ययात्मकत्वेन पृथग्विभागोऽनुचितः, तथापि प्रमाणानुग्राहकत्वात् स उचित इति बोध्यम् । स्वप्नस्तु पुरीतद्बहिर्देशान्तर्देशयोः सन्धौ इडानाड्यां वा मनसि स्थितेऽदृष्टविशेषेण धातुदोषेण वा जायते । स च मानसविपर्ययान्तर्गतः ।

सुखं निरूपयति—**सर्वेषामिति** । सर्वात्मनामनुकूलमिति वेद्यं यत्तत्सुखमित्यर्थः ।

अहं सुखीत्यनुभवसिद्धसुखत्वजातिमत्, धर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो वा सुखम् । शत्रुदुःखवारणाय सर्वेषामिति ।

**प्रतिकूलेति** । दुःखत्वजातिमत्, अधर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो वा दुःखम् । पदकृत्यं पूर्ववत् ।

**मेधा**

जो सभी को प्रतिकूल लगे वह 'दुःख' है ।

इच्छाद्वेषप्रयत्नानां कानि लक्षणानि ?

**इच्छा कामः। क्रोधो द्वेषः। कृतिः प्रयत्नः ॥**

धर्मस्य अधर्मस्य च किं लक्षणम् ?

**विहितकर्मजन्यो धर्मः, निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः ॥**

---

न्यायबोधिनी

धर्माधर्मौ निरूपयति—विहितेति। वेदविहितेत्यर्थः। निषिद्धेति। वेदनिषिद्धेत्यर्थः।

पदकृत्यम्

इच्छां निरूपयति-इच्छेति। काम इति पर्यायः। इच्छात्वजातिमती इच्छा। सा द्विविधा-फलेच्छा उपायेच्छा च। फलं सुखादिकम्। उपायो यागादिः। द्वेषं निरूपयति—क्रोध इति। द्वेष्टीत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान् द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा द्वेषः। प्रयत्नं निरूपयति—कृतिरिति। प्रयत्नत्वजातिमान् प्रयत्नः। स त्रिविधः-प्रवृत्तिनिवृत्तिजीवनयोनिभेदात्। इच्छाजन्यो गुणः प्रवृत्तिः। द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः। जीवनादृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः। स च प्राणसञ्चारकारणम्।

धर्ममाह—विहितेति। वेदविहितेत्यर्थः। अधर्मवारणाय वेदविहितेति। यागादिक्रियावारणाय कर्मजन्य इति। स च कर्मनाशाजलस्पर्शकीर्तनभोग-तत्त्वज्ञानादिना नश्यति। अधर्मलक्षणमाह—निषिद्धेति। वेदेनेत्यर्थः। धर्मवारणाय वेदनिषिद्धेति। वेदनिषिद्धक्रियावारणाय कर्मजन्य इति। स च भोगप्रायश्चित्तादिना नश्यति। एतावेव अदृष्टमिति कथ्येते, वासनाजन्यौ च। वासना च विलक्षणसंस्कारः।

मेधा

कामना का नाम इच्छा है। क्रोध का नाम द्वेष है। कृति का नाम प्रयत्न है।

श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त विधि से विहित जो कर्म हैं उनसे उत्पन्न हुए अदृष्ट का नाम धर्म (पुण्य) है।

निषिद्ध कर्म से उत्पन्न अदृष्ट का नाम अधर्म (पाप) है।

आत्ममात्रविशेषगुणाः के ?

**बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः । बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्च । नित्या ईश्वरस्य, अनित्या जीवस्य ॥**

संकार कतिविधः, तद्भेदाश्च किं स्वरूपाः ?

**संस्कारस्त्रिविधः—वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति । वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः । अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना, आत्म-**

---

न्यायबोधिनी

**बुद्ध्यादयोऽष्टाविति** । बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मा इत्यर्थः । संस्कारं विभजते—**संस्कार इति** । भावनां लक्षयति—**अनुभवेति** ।

पदकृत्यम्

संस्कारं विभजते—**संस्कार इति** । सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्ति-गुणत्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः । घटादिवारणाय गुणत्वव्याप्येति । संयोगादिवारणाय आत्मविशेषगुणोभयवृत्तीति । ज्ञानादिवारणाय सामान्येति । द्वितीयादिपतनासमवायिकारणं वेगः । रूपादिवारणाय द्वितीयादिपतनेति । कालादिवारणाय असमवायीति । भावनां लक्षयति—**अनुभवेति** । आत्मादि-

मेधा

बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म—ये आठ आत्मा के विशेषगुण हैं ।

उनमें बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न—ये दो प्रकार के हैं, नित्य और अनित्य ।

ईश्वर की बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न नित्य हैं । जीव की बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न अनित्य हैं ।

संस्कार तीन प्रकार का है—वेग, भावना और स्थितिस्थापक । वेग पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन इन पाँचों में रहता है । जो अनुभव से उत्पन्न होती है, और स्मरण को जनमाती है उसका नाम भावना है । यह केवल आत्मा में रहती है ।

मात्रवृत्तिः। अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः,

न्यायबोधिनी

अत्रानुभवजन्यत्वे सतीति विशेषणानुपादाने आत्ममनःसंयोगेऽतिव्याप्तिरात्ममनःसंयोगस्य ज्ञानमात्रं प्रत्यसमवायिकारणत्वेन स्मृतिं प्रत्यपि कारणत्वादतस्तदुपादानम्, आत्ममनःसंयोगस्यानुभवजन्यत्वाभावान्नातिव्याप्तिः। तावन्मात्रे कृतेऽनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः, ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वेनानुभवध्वंसस्याप्यनुभवजन्यत्वात्, अतः स्मृतिहेतुत्वमिति। ध्वंसस्य च स्मृतिहेतुत्वाभावान्नातिव्याप्तिः। ननु विशिष्टबुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणता सकलतान्त्रिकमतसिद्धा, यथा दण्डविशिष्टबुद्धिं प्रति दण्डज्ञानं कारणम्। दण्डविशिष्टबुद्धिर्नाम दण्डप्रकारकबुद्धिः। तथा च दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति दण्डज्ञानत्वेन कारणत्वमित्यापतितम्, दण्डप्रकारकबुद्धिः दण्डी पुरुष इत्याकारकबुद्धिस्तत्र दण्डज्ञानं कारणम्। नहि दण्डमजानानः पुमान् 'दण्डी पुरुषः' इति प्रत्येति, एवं च यत्रायं दण्ड इति प्रत्यक्षं जातं तदनन्तरं दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षमुत्पन्नं तत्र दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः, तद्धि स्वाव्यवहितपूर्वक्षणोत्पन्नदण्डज्ञानात्मकानुभवजन्यं, जनिष्यमाणे दण्डी पुरुष इत्याकारकस्मरणे कारणं च, स्मृतिं प्रत्यनुभवस्य कारणत्वात्तथा चानुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वरूपभावनालक्षणस्य यथोक्त दण्डी-पुरुष-इत्याकारकानुभवे विद्यमानत्वादतिव्याप्तिरिति चेत्? अत्र ब्रूमः—अनुभव-

पदकृत्यम्

वारणाय प्रथमदलम्। अनुभवध्वंसवारणाय द्वितीयदलम्। स्थितिस्थापकत्वमाह—अन्यथेति। पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम्। गन्धत्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारत्वव्याप्येति। भावनात्वमादाय भावनायामतिव्याप्तिवारणाय पृथिवीसमवेतेति। स्थितिस्थापकरूपान्यतरमादाय रूपवारणाय जातीति।

मेधा

दूसरी अवस्था में गयी हुई (झुकी हुई वह व टेढ़ी हुई) वस्तु को पुनः पूर्वावस्था में लाने वाला जो संस्कार है—वह स्थितिस्थापक कहलाता है।

**कटादिपृथिवीवृत्तिः ॥ इति गुणाः ॥**

---

न्यायबोधिनी

जन्यत्वं हि अनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वम् । तत्र कारणतायामनुभवत्वावच्छिन्नं निवेश्यते, तथा चानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वमिति फलितम्, अतो नोक्तातिव्याप्तिः, तथा हि—दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितदण्डज्ञाननिष्ठा या कारणता तस्या न दण्डानुभवत्वमवच्छेदकं दण्डानुभवादिव दण्डस्मरणादपि दण्डप्रकारकबुद्धेरुत्पत्तेः, अतो दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति अनुभवस्मरणसाधारणदण्डज्ञानत्वेनैव दण्डज्ञानस्य कारणतायाः स्वीकरणीयत्वेन दण्डज्ञानत्वस्यैव तदवच्छेदकत्वात् । तथा चानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यत्वस्योक्तप्रत्यक्षेऽभावान्नातिव्याप्तिः । भावनात्वावच्छिन्नं प्रत्यनुभवस्यानुभवत्वेनैव कारणतया भावनात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितानुभवनिष्ठकारणतायामनुभवत्वमवच्छेदकम्, अतोऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वं भावनायां वर्तते इति नासम्भवः । नन्वेवं स्मृतिहेतुत्वविशेषणवैयर्थ्यम्, न हि तद्विनाऽनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः प्रसज्यते, तथाहि—ध्वंसत्वाच्छिन्नं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वं प्रतियोगित्वेन रूपेण, तत्तद्ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति च तत्तत्प्रतियोगिव्यक्तेस्तत्तद्व्यक्तित्वेनेत्येवं ध्वंसप्रतियोगिनोः कार्यकारणभावः, तथा च ध्वंसनिष्ठकार्यतानिरूपिता याऽनुभवनिष्ठा कारणता तस्यां प्रतियोगित्वमवच्छेदकं तत्तद्व्यक्तित्व च, न त्वनुभवत्वमपीत्यनुभवध्वंसेऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वरूपानुभवजन्यत्वविरहेणैवातिव्याप्तिवारणसम्भवात्कृतं स्मृतिहेतुत्वविशेषणेनेति चेत् ? न, स्मृतावतिव्याप्तिवारणायैव तदुपादानात् ।

पदकृत्यम्

इति गुणा इति । द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः । द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम् । सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् ॥ इति गुणाः ॥

मेधा

यह चटाई, धनुष आदि में रहता है ।

## [४] अथ कर्मविलक्षणप्रकरणम्

कर्मणः किं लक्षणम् ?

**चलनात्मकं कर्म। ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम्। अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम्। शरीरस्य सन्निकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम्। विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम्। अन्यत्सर्वं गमनम्।**

सामान्यस्य किं लक्षणम् ?

**नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्। द्रव्यगुणकर्मवृत्ति। परं सत्ता,**

---

### न्यायबोधिनी

तथाहि स्मृतिं प्रत्यनुभव एव कारणं न तु स्मृतिरप्यतो घटस्मृतित्वावच्छिन्नं प्रति घटानुभवस्य घटानुभवत्वेनैव कारणत्वं न तु घटाज्ञानत्वेन, तथा च घटस्मृतिनिष्ठकार्यतानिरूपिता या घटानुभवनिष्ठा कारणता तस्यां घटानुभवत्वमवच्छेदकम्, तेनानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्य स्मृतौ विद्यमानत्वादतिव्याप्तिवारणाय स्मृतिहेतुत्वम्, न हि स्मृतिः स्मृतिहेतुः, अतो न तत्रातिव्याप्तिरित्यलं पल्लवतल्लजकल्पानल्पजल्पनेन।

सामान्यं निरूपयति—नित्यमेकमिति। नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं

### पदकृत्यम्

**चलनेति**। संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म। हस्तपुस्तकसंयोगवारणाय सत्यन्तम्। घटादिवारणाय विशेष्यदलम्। **ऊर्ध्वेति**। अपक्षेपणवारणाय ऊर्ध्वेति। कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि देयम्। **अधोदेशेति**। उत्क्षेपणादिवारणाय अधोदेशेति। कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि देयम्। **शरीरेति**। प्रसारणादिवारणाय सन्निकृष्टेति। कालादिवारणाय असाधारणपदमप्यावश्यकम्।

### मेधा

चलने आदि क्रिया का नाम कर्म है। उर्ध्वदेश में संयोग होने का कारण उत्क्षेपण है। अधोदेश में संयोग होने का कारण अपक्षेपण है। शरीर के समीप संयोग का हेतु आकुञ्चन ( समेटना ) है। शरीर से दूर संयोग का हेतु प्रसारण (फैलाना) है। इनसे भिन्न कर्म को गमन कहते हैं।

**अपरं द्रव्यत्वादि ।**

विशेषस्य किं लक्षणम् ?

**नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः ।**

न्यायबोधिनी

सामान्यलक्षणम् । नित्यत्वविशेषणानुपादानेऽनेकसमवेतत्वस्य संयोगादौ सत्त्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वारणाय नित्यत्वविशेषणम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वमात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिस्तद्वारणायानेकसमवेतत्वम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वविशिष्टसमवेत्वमात्रोक्तावाकाशगतैकत्वपरिमाणादौ जलपरमाणुगतरूपादौ चातिव्याप्तिः, जलपरमाणुगतरूपादेराकाशगतैकत्वपरिमाणादेर्नित्यत्वात्समवेतत्वाच्च, अतः अनेकेति समवेतविशेषणम् ।

नित्यद्रव्यवृत्तय इति । नित्यद्रव्येषु परमाण्वादिषु वर्तमानाः, अत एव व्यावर्तकाः—इतरभेदानुमितिहेतवः, नित्यद्रव्यवृत्तित्वरूपपक्षधर्मताप्रयोज्येतरभेदानुमापकताशालिन इत्यर्थः । नित्यद्रव्यनिष्ठविशेष्यतानिरूपितैकमात्रवृत्तिभेदानुमितजिनकतावच्छेदकप्रकारताश्रयत्वं विशेषाणां लक्षणमिति भावः । पार्थिवपरमाणौ जलादिभेदानुमापकगन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय एकमात्रवृत्तित्वं

पदकृत्यम्

नित्यमिति । संयोगादिवारणाय नित्यमिति । कालादिपरिमाणवारणाय अनेकेति । अनेकानुगतत्वं च समवायेन बोध्यम्, तेन नात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः ।

नित्यद्रव्यवृत्तय इति । घटत्वादिवारणाय नित्यद्रव्यवृत्तय इति । आत्मत्वमनस्त्ववारणाय आत्मत्वमनस्त्वभिन्ना इत्यपि बोध्यम् ।

मेधा

जो नित्य हो और एक हो परन्तु अनेक पदार्थों में समवेत हो वह 'सामान्य' कहलाता है। यह सामान्य (जाति) द्रव्य, गुण, कर्म में हीं रहता है।

सबसे अधिक देश में रहने वाली जाति है पर सामान्य, अर्थात् 'सत्ता'। और द्रव्यत्व आदि जाति सत्ता से न्यून देश में रहती हैं। अतः ये अपर-सामान्य हैं।

नित्य द्रव्यों में रहते हुए जो दूसरों को व्यावृत्त करे वह विशेष है।

समवायस्य किं लक्षणम् ?

**नित्यसम्बन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः। ययोर्द्वयोर्मध्ये एक-मविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ। यथा अवयवा-वयविनौ गुणगुणिनौ क्रियाक्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्यद्रव्ये चेति।**

प्रागभावस्य किं लक्षणम् ?

**अनादिः सान्तः प्रागभावः, उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य।**

---

न्यायबोधिनी

भेदविशेषणम्। घटादौ तदितरभेदानुमापके तद्रूपादावतिव्याप्तिवारणाय निरूपितान्तं प्रकारताविशेषणम्; एतेन 'व्यावर्त्तका' इत्यस्य नित्यद्रव्यविशेष्य-केतरभेदानुमितिप्रयोजका इत्यर्थकतया लक्षणपरत्वेन साफल्येऽपि नित्य-द्रव्यवृत्तय इति विफलमेव, स्वरूपाख्यानस्यापि कृतत्वादिति प्रत्युक्तम्।

समवायं निरूपयति–नित्येति। सम्बन्धत्वं विशिष्टप्रतीतिनियामकत्वम्। तावन्मात्रोक्तौ संयोगेऽतिव्याप्तिरतो नित्य इति विशेषणम्। ययोर्द्वयोर्मध्य इति। यन्निष्ठकालनिरूपिताधेयतासामान्यं यदवच्छिन्नं तदुभयान्यतरत्वमयुत-सिद्धत्वमित्यर्थः।

पदकृत्यम्

नित्येति। आकाशादिवारणाय सम्बन्ध इति। संयोगवारणाय नित्येति। स्वरूपसम्बन्धवारणाय तद्भिन्न इत्यपि बोध्यम्।

मेधा

नित्यसम्बन्ध का नाम समवाय है। समवाय सम्बन्ध अयुतसिद्ध पदार्थों में रहता है।

जिन दो में एक पदार्थ—जब तक वह नष्ट नहीं होता तब तक दूसरे के विना न रह सके—वे दोनों अयुतसिद्ध हैं। जैसे—अवयव और अवयवी, गुण और द्रव्य, क्रिया और द्रव्य, जाति और व्यक्ति, नित्य-द्रव्य और विशेष।

प्रध्वंसस्य किं लक्षणम् ?

**सादिरनन्तः प्रध्वंसः, उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य ।**

अत्यन्ताभावस्य किं लक्षणम् ?

**त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । यथा भूतले घटो नास्तीति ।**

---

न्यायबोधिनी

अत्यन्ताभावं निरूपयति—त्रैकालिकेति । ( प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वे सत्यन्योन्याभावभिन्नत्वे सति अभावत्वमत्यन्ताभावस्य

पदकृत्यम्

प्रागभावं लक्षयति—अनादिरिति । घटादिवारणाय प्रथमदलम् । परमाणुवारणाय द्वितीयदलम् । पुनः प्रागभावः कस्मिन्कालेऽस्तीत्यत आह—उत्पत्तेरिति । कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् स्वप्रतियोगिसमवायिकारणे वर्तते इत्यर्थः ।

ध्वंसं लक्षयति—सादिरिति । घटादिवारणाय अनन्त इति । आत्मादिवारणाय सादिरिति । उत्पत्तीति । कार्यस्योत्पत्त्यनन्तरं स्वप्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तिरित्यर्थः । स च 'ध्वस्त' इति प्रत्ययविषयः ।

अत्यन्ताभावं लक्षयति—त्रैकालिकेति । त्रैकालिकत्वे सति संसर्गा-

मेधा

जिसका आदि न हो पर अन्त हो ऐसा अभाव प्रागभाव कहलाता है । जैसे घट आदि कार्यों की उत्पत्ति के पूर्व जो उनका अभाव है वह प्रागभाव है ।

जिस अभाव का आदि तो हो परन्तु अन्त न हो उसका नाम प्रध्वंसाभाव है । जैसे घट आदि कार्यों का उत्पत्ति के बाद का जो अभाव है वह प्रध्वंसाभाव है ।

जिस अभाव की प्रतियोगिता संसर्ग से अवच्छिन्न हो और भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान इन तीनों कालों में रहता हो वह अत्यन्ताभाव है । जैसे 'भूतले घटो नास्ति' ( भूमि पर घड़ा नहीं है ) वह अभाव अत्यन्ताभाव है ।

अन्योन्याभावस्य किं लक्षणम् ?

**तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः। यथा घटः पटो नेति।**

पदार्थानुपसंहरति

**सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम्॥**

---

न्यायबोधिनी

लक्षणम्। ध्वंसप्रागभावान्योन्याभावाकाशादीनां वारणाय यथाक्रमं विशेषणोपादानम्। वस्तुतस्तु संसर्गाभावत्वं तादात्म्यभिन्नसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वम्, ध्वंसप्रागभावयोश्च न संसर्गावच्छिन्नंप्रतियोगिताकत्वमिति तेनैव तद्वारणे त्रैकालिकेति स्वरूपाख्यानमेवेति बोध्यम्)।

अन्योन्याभावं निरूपयति—तादात्म्येति। अभावत्रयवारणाय विशेषणम्। घटाभाववान्नेति प्रतीतिविषयघटादिवारणाय विशेष्यम्।

ननु सादृश्यादीनामतिरिक्तपदार्थानामनिरूपणेन न्यूनतेत्यत आह—सर्वेषामिति। 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम' इति न्यायस्यादिमसूत्र उक्तानां प्रमाणप्रमेयादीनामित्यर्थः। तद्भिन्नत्वविशिष्ट-

पदकृत्यम्

वच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः। ध्वंसप्रागभाववारणाय त्रैकालिकेति। भेदवारणाय संसर्गेत्यादि।

अन्योन्याभावं लक्षयति—तादात्म्येति। प्रागभावप्रध्वंसाभाववारणाय तादात्म्येति। अत्यन्ताभाववारणाय तादात्म्यत्वेन सम्बन्धो विशेषणीयः॥

मेघा

जिसकी प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्ध से अवच्छिन्न हो वह अन्योन्याभाव कहलाता है। जैसे—घट पट नहीं है—यह अन्योन्याभाव है।

दर्शनशास्त्रों में कहे हुए सभी—पदार्थों का अन्तर्भाव पूर्वोक्त सात पदार्थों में ही हो जाता है, अतः सात ही पदार्थ हैं—यह सिद्ध है॥

## काणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।

### न्यायबोधिनी

तद्गतभूयोधर्मरूपसादृश्यस्यापि घटपटादिरूपत्वेन नातिरिक्तत्वम् । एवमन्येषामप्यूह्यम् ।

**काणादेति** । कणादस्येदं काणादम् । काणादन्यायमते इति द्वन्द्वगर्भकर्मधारयः । कणादप्रोक्तगौतमप्रोक्तमतयोरिति यावत् । कणादन्यायाभिन्नमतद्वयविषयबालसमवेताभिन्नव्युत्पत्तिसिद्धिप्रयोजकान्नंभट्टविद्वन्निष्ठभूतकालीनकृति-

### पदकृत्यम्

पदार्थज्ञानस्य परमप्रयोजनं मोक्ष इत्यामनन्ति । स च आत्यन्तिकैकविंशतिदुःखध्वंसः । आत्यन्तिकत्वं च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वम् । दुःखध्वंसस्येदानीमपि सत्त्वेनास्मदादीनामपि मुक्तत्वापत्तिवारणाय कालीनान्तम् । मुक्तस्यात्मकदुःखध्वंसस्यान्यदीयदुःखप्रागभावसमानकालीनत्वाद्वामदेवादीनां मुक्तात्मनाप्यमुक्तत्वप्रसंगात्स्वसमानाधिकरणेति प्रागभावविशेषणम् । दुःखानि चैकविंशतिः—शरीरं षडिन्द्रियाणि षड्विषयाः षड्बुद्धयः सुखं दुःखं चेति । दुःखानुषङ्गित्वाच्छरीरादौ गौणदुःखत्वम् । तथा च 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति श्रुतेरात्मज्ञानसाधननिदिध्यासनमननसाधनत्वं पदार्थज्ञाने संजाघटीति । एवं च तत्त्वज्ञाने सति शरीरपुत्रादावात्मत्वस्वीयत्वाभिमानरूपमिथ्याज्ञानस्य नाशः, तेन प्रवृत्त्यनुत्पत्तिः, ततस्तत्कालीनशरीरेण कायव्यूहेन वा भोगतत्त्वज्ञानाभ्यां प्रारब्धकर्मणां नाशः, ततो जन्माभावः ।

नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।
ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत् ॥
अभ्यासात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ॥

### मेधा

काणाद ( वैशेषिक ) और गौतम (न्याय) के मत में बालकों के सुख से

अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ।।
इति श्री महोपाध्यायान्नंभट्टविरचितस्तर्कसंग्रहः समाप्तः ।।

———०———

---

न्यायबोधिनी

विषयाभिन्नस्तर्कसंग्रहाख्यग्रन्थ इत्यन्वयबोधः ।।

कृष्णावलम्बिनो गाः पुरुषो गोवर्धनस्तमभ्यर्चन् ।
विपुलाभीरसभाजनजनितबुधेन्द्रस्तवाभिरचनाभिः ।।

इति श्रीगोवर्धनविरचिता न्यायबोधिनी समाप्ता ।।

———०———

पदकृत्यम्

इत्यादिवचनात् 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' इति श्रुतेश्च, सगुणोपासना-काशीमरणादेरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिहेतुत्वम् । अत एव परमेश्वरः काश्यां तारकमुपदिशतीति सारम् ।।

इति श्रीमत्तत्रभवद्गुरुदत्तसिंहशिष्यश्रीचन्द्रजसिंहविरचितं पदकृत्यं समाप्तम् ।।

———०———

मेधा

प्रविष्ट होने के लिये मैं अन्नभट्ट नामक पण्डित ने यह तर्कसंग्रह बनाया है ।।

———०———

पं. विष्णुशर्माप्रणीतम्

# पञ्चतन्त्रम्

**'ज्योत्स्ना'-'मृदुला' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित**

सम्पादक एवं व्याख्याकार—डॉ. सुधाकर मालवीय

पञ्चतन्त्र विश्व-पशुकथा की परम्परा में भारत की एक महान् देन है। इसके लेखक पं. विष्णु शर्मा हैं। इसमें सरल संस्कृत भाषा में अनेक पशु-कथाएँ वर्णित हैं जिनमें जीवन की विविध समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

'पञ्चतन्त्र' का सर्वप्रथम परिष्कार एवं परिबृहण प्रसिद्ध जैन विद्वान् पूर्णभद्र सूरि ने संवत् १२२५ में किया था। आजकल का उपलब्ध संस्करण इसी पर आधृत है।

'पञ्चतन्त्र' में पाँच तन्त्र या विभाग हैं—मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीयम् (सन्धि विग्रह), लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षितकारक। इसके प्रत्येक अंश में एक मुख्य कथा होती है और उसको पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएँ गुंफित होती हैं।

पञ्चतन्त्र का प्रस्तुत संस्करण गद्य एवं श्लोकों को विस्तृत संस्कृत व्याख्या प्रस्तुत करने वाला अद्यावधि प्राप्त संस्करणों में प्रथमतः है। सभी श्लोकों की व्याख्या में उनके छन्द एवं अलंकार का भी निर्देश है। अद्यावधि प्राप्त मूल बहुत भ्रष्ट था। अतः विद्वान् सम्पादक ने डॉ. हर्टेल द्वारा सर्वप्रथम सम्पादित हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज (१३) के संस्करण से सहायता लेकर इसका मूल शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण पञ्चतन्[illegible]र्वप्रथम इसमें प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार विभिन्न सूक्ति[illegible]का तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ परिक्ष[illegible]त्यन्त उपयोगी है।


वधि प्राप्त संस्करणों में प्रथमतः है।
ार का भी निर्देश है। अद्यावधि प्राप्त
डॉ. हर्टेल द्वारा सर्वप्रथम सम्पादित हार
से सहायता लेकर इसका मूल शुद्ध रूप
न्त्र के श्लोकों की अनुक्रमणी सर्वप्र


---


**चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस**

पोस्ट बॉक्स नं० १००८, के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी-२२१ ००१ (भारत) फोन : ३३३४५८
e-mail : cssoffice@satyam.net.in